

टकराव नहीं समझौता

मंथन से नवनीत मिलेगा

**एसो पंचणमोयारो सव्वपावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होइ मंगलं ॥**

एक युवक शहर से गाँव की ओर जा रहा था। रास्ते में भयानक जंगल पड़ा और उसे तीव्र संघर्षण की आवाज़ सुनाई पड़ी। उसने देखा बाँस के पेड़ हवा के प्रहार से एक दूसरे से टकरा रहे हैं और उनकी टकराहट से अलग ही प्रकार की आवाज़ आ रही थी। देखते-देखते ही आवाज़ और बढ़ी तथा आग में परिवर्तित हो गई। संघर्षण हुआ, आवाज़ आयी और आग लग गयी। जंगल पार कर वह गाँव की सीमा में पहुँचा। फिर आवाज़ आयी। वह आवाज़ की दिशा में आगे बढ़ा। उसने देखा - एक महिला दही मंथन कर रही है। कुछ पल के लिए वहाँ ठहरा। उसने देखा कि मंथन के बाद नवनीत निकला।

इन दो घटनाओं से जीवन के दो महत्त्वपूर्ण सूत्र हम-सबके हाथ लग गये। **जहाँ संघर्षण है वहाँ आग है और जहाँ मंथन है वहाँ नवनीत।** बाँस के पेड़ जहाँ टकराते हैं, अपनी जगह टिके रहते हैं, अड़े रहते हैं तो वहाँ चिंगारी या आग पनपती है, उसे कोई रोक नहीं सकता। लेकिन दूसरी ओर मथानी मंथन की क्रिया है। मंथन क्रिया में एक तरफ से खींचा जाता है तो दूसरी तरफ ढील दी जाती है। उसने देखा कि वह महिला एक हाथ को खींचती थी तो दूसरे हाथ को ढीला छोड़ देती थी। मंथन की क्रिया वह है जहाँ अपनी बात को खींचना तो है लेकिन साथ ही सामने वाले की बात का आदर भी करना है। **जहाँ दूसरों की भावना और अपेक्षाओं का ख्याल रखकर अपनी प्रवृत्ति की जाती है, वहाँ शान्ति का नवनीत मिलता है। जहाँ अपनी बात पर अड़ जाते हैं, वहाँ अशान्ति की ज्वाला फैलती है।**

बन्धुओं, हम सबके लिए यह सूत्र बहुत महत्त्वपूर्ण है। हम भगवान महावीर जयन्ती की पूर्व संध्या पर बैठकर भगवान महावीर के द्वारा दिये गये जीवनसूत्रों की चर्चा करने जा रहे हैं। भगवान महावीर भले ही आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व हुए पर उनके सिद्धान्त आज भी प्रासंगिक हैं। मैं तो समझता हूँ कि भगवान महावीर के सिद्धान्त अतीत में जितने प्रासंगिक थे, उससे ज्यादा उनकी प्रासंगिकता आज है। अतीत काल में हिंसा थी, हा-हाकार था, त्रास भी था, लेकिन भौतिकता का उतना प्रवाह न था, जो आज के युग में मनुष्य की प्रवृत्ति को क्रूरता की ओर ले जा रहा है। उसका चिन्तन अनुदार हो रहा है। उसकी सोच संकीर्ण हो रही है। इन सब कारणों से उसकी मानसिकता बीमार बन गई है। बीमार मानसिकता में सुख और शान्ति का आनन्द नहीं लिया जा सकता है। आज का हर इंसान बहुत अशान्त और दुखी है। तनाव से ग्रसित जीवन में द्वंद्व है। हर आदमी अपनी जिंदगी जीना चाह रहा है पर जी नहीं पा रहा है। जीने के नाम पर जिंदगी को ढो रहा है।

भगवान महावीर ने जो संदेश दिया, यदि हम उसे आत्मसात् करें तो सच में हम न केवल जिंदगी को जीने का सौभाग्य पायेंगे, अपितु इस जीवन में जीवन का रस ले पायेंगे। अपने जीवन को आनन्दित बनाने में समर्थ हो जायेंगे। आज मैं भगवान महावीर के द्वारा प्रदत्त सिद्धान्तों में से एक ऐसे सिद्धान्त की बात आपसे करने जा रहा हूँ, जिसे दार्शनिक क्षेत्र में प्रधानता मिलती है। भगवान महावीर कहते हैं उसके बिना हमारा जीवन-व्यवहार भी नहीं चल सकता। और वह है अनेकान्त।

समस्याओं का समाधान : अनेकान्त

जैन लोग तो **अनेकान्त को जैनदर्शन का हृदय** मानते हैं। ऐसा कहा जाता है कि अनेकान्त को जैनदर्शन से यदि अलग कर दिया जाये तो जैनदर्शन के पास कुछ है ही नहीं। अनेकान्त वह दर्शन है, जो संसार के सभी दर्शनों से जैनदर्शन को पृथक् पहचान दिलाता है। या ऐसा भी कहा जा सकता है कि विश्व के सभी दर्शनों के मध्य समन्वय स्थापित कर एक मौलिक प्रतिष्ठा प्रदान कराने वाला है। अनेकान्त वह माध्यम है जिसमें सारी समस्याओं का समाधान है। अनेकान्त वह जीवन दर्शन है, जिसमें जीवन की समग्रता का मूल तत्त्व छिपा हुआ है। जीवन की

व्यापकता का बीज छिपा हुआ है। लेकिन एक बिडम्बना है कि हमने अनेकान्त को दार्शनिक सन्दर्भ में समझा, उसके गीत गाये, लेकिन जीवन-व्यवहार में उसकी उपयोगिता को अकसर नज़रअंदाज़ किया है। एक आचार्य ने लिखा है -

जेण विणा लोगस्स वावारो ण संभवदि ।

तं तिहुवणेक्कगुरुणो, णमो पेयंतवायस्स ॥

उस अनेकान्तवाद को प्रणाम करता हूँ, जिसके बिना लोक-व्यवहार नहीं चल सकता।

वस्तुतः अनेकान्त है क्या ? थोड़ा समझें। जीवन व्यवहार में अनेकान्त को अपनाकर हम अपना जीवन कैसे सुखी-शान्त बना सकते हैं। जीवन में उभरने वाले द्वंद्व और दुविधा से बचने के लिए अनेकान्तात्मक सोच यहाँ सहारा बनती है। सच है, सुबह से सोने तक जो भी काम करते हैं उनमें अनेकान्त को ही अपनाना पड़ता है। जहाँ इसे अपनाते हैं, तो जीवन के कार्यों में सरलता आ जाती है। जहाँ इससे नीचे जाते हैं, वहाँ हमारे सरल कार्य भी कठिन हो जाते हैं।

खुल जाती हैं प्रचुर दृष्टियाँ

‘अनेकान्त’ क्या है ? अनेक और अन्त इन दो शब्दों के मिलने से अनेकान्त शब्द बना है। भगवान महावीर कहते हैं कि जगत की जितनी वस्तुएँ हैं, वे वैसी ही नहीं हैं, जैसी तुम्हें दिखती हैं। अपितु तुम्हारे द्वारा अनेक दृष्टियों द्वारा देखे जाने योग्य हैं। तुम जो देख रहे हो, या दिख रहा है वह सब कुछ नहीं है। तुम्हारे द्वारा जो देखा गया वह सत्यांश हो सकता है, पूर्ण सत्य नहीं। सत्य तक पहुँचने के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण अपनाना पड़ेगा। वस्तु परस्पर विरोधी अनेक धर्मयुगलों का पिण्ड है। जो तुम्हें अच्छा दिख रहा है, वह किसी सन्दर्भ में गलत भी हो सकता है। और जो बुरा दिखाई दे रहा है वह अच्छा भी हो सकता है। जो प्राणाधार है वह जानलेवा भी है और जिसे जानलेवा समझते हो, वह किसी सन्दर्भ में प्राणों का आधार भी है।

महाराज, यह उलटवासी जैसे बातें हमारी सोच से परे हैं। संत कहते हैं - ऐसी कोई बात नहीं, यह बहुत बड़ा यथार्थ है, जिसे तुम जीवन में रोज़ महसूस करते हो लेकिन नज़रअंदाज़ कर रहे हो।

बन्धुओं, जो जीवन के प्रति जागरूक होते हैं वे जीवन में घटित होने वाली एक-एक घटना से रस निचोड़ लेते हैं और जो जीवन के प्रति अजागरूक होते हैं। उनका जीवन बीत जाता है, उनके हाथ में कुछ भी नहीं आता है।

भगवान महावीर कहते हैं - प्रत्येक वस्तु परस्पर विरोधी गुणधर्मों का पिण्ड है। जैसे आधा गिलास पानी से भरा है। इसका मतलब आधा गिलास खाली है। आधा गिलास भरा है, यह जितना सही है, उतना ही सही यह भी है कि आधा गिलास खाली भी है। अब खालीपन और भरापन परस्पर विरोधी हुए कि नहीं ? लेकिन हम उन दोनों को स्वीकारते हैं। कोई कहता है कि गिलास आधा भरा है, उसे सच मानते हैं और कोई कहता है गिलास आधा खाली है। इससे भी हम झगड़ा नहीं करते हैं। जब हमारा ध्यान खालीपन पर जायेगा तो गिलास खाली दिखाई देगा और जब हम भरापने पर ध्यान देगे तो गिलास भरा दिखाई देगा।

भगवान महावीर कहते हैं - जल हमारे जीवन का प्राणाधार है। लेकिन कोई नदी में डूब रहा हो तो प्राण लेवा भी है। जो प्राणाधार है वह प्राणलेवा भी है, यदि ज़हर प्राणनाशक है तो वही ज़हर औषधि के रूप में संजीवनी बूटी भी हो सकता है। हम इन बातों को समझ लें, कि जगत में जितनी भी वस्तुएँ हैं, जितने भी प्रसंग हैं वह परस्पर दोनों को लेकर चलते हैं। हर चीज़ों के दो पहलू होते हैं। यदि हम पोजिटिव को रखते हैं तो कहीं न कहीं निगेटिव का अस्तित्व भी आता है। उसी प्रकार दिन का निगेटिव रात है। रात वहीं होगी जहाँ दिन है। प्रकाश वहीं है, जहाँ अंधेरा है।

आइन्स्टीन ने समझी सापेक्षता

भगवान महावीर ने हमारे लिए बहुत गहरा दर्शन दिया है। वे कहते हैं - संसार में जितने अस्तित्व हैं वे सब सापेक्ष हैं। **प्रिंसिपल ऑफ रिलेटिविटी** को समझो। सापेक्षता के सिद्धान्त को समझो। जब तुम इस सिद्धान्त को समझने में समर्थ हो जाओगे तो तुम्हारे मन का दर्प, दम्भ या अहंकार अपने आप समाप्त हो जायेगा। क्योंकि तुम्हें अपनी अज्ञानता समझ में आ जायेगी। वैज्ञानिक युग में ये

बताने की जरूरत नहीं है कि एक ही वस्तु परस्पर विरोधी कैसे हो सकती है। देखिए एक ही परमाणु में जहाँ आकर्षण शक्ति काम कर रही है, वहीं उसकी विकर्षण शक्ति भी अपना स्थान जमाए हुए है। जहाँ सृजनकारी शक्तियाँ हैं, वहाँ विध्वंसकारी शक्तियाँ भी अपना अस्तित्व जमाए हुए हैं। आकर्षण और विकर्षण, सृजन व विध्वंस ये परस्पर विरोधी होने के बाद भी उस परमाणु में एक साथ उपस्थित हैं।

जो किसी सन्दर्भ में बड़ा है, वह किसी अन्य सन्दर्भ में छोटा भी है। इसी का नाम अनेकान्त है। इस सन्दर्भ को समझना यदि सीख जाएँ तो हमारे मन का सारा संघर्ष समाप्त हो जाय।

‘ही’ को त्यागें, ‘भी’ अपनायें

भगवान महावीर कहते हैं - **संसार में जितने भी झगड़े हैं वे सब आग्रह के कारण खड़े हैं। सारे आग्रह अभिमान से जन्म लेते हैं। जब अभिमान बलवान होता है, तो अपने अभिमान से बढ़कर आग्रह तक पहुँच जाते हैं। जहाँ आग्रह होता है वहाँ संघर्ष होता है और जहाँ सामने वाले की बात का ध्यान रखा जाता है वहाँ समन्वय होता है।** भगवान महावीर कहते हैं कि समन्वय को अपनाओ आग्रह को नहीं। अपने जीवन को आगे बढ़ाने की कोशिश कीजिए।

विनोबा जी के पास एक व्यक्ति गया, बोला - पता नहीं, लोग मेरी बात क्यों नहीं मानते हैं। मेरी जो भी बात रहती है बिल्कुल सही होती है। विनोबा जी उसकी बात सुनकर मुस्कराये और कहा - तुम जो भी कहते हो वह बिल्कुल सही होता है। हाँ बाबा, बिल्कुल सही होता है। विनोबा जी ने पूछा - हिमालय किधर है? उसने कहा - उत्तर में। विनोबा जी ने कहा - ये बताओ, यदि यही प्रश्न किसी चीन के आदमी से पूछा जाय तो उसका जवाब क्या होगा? दक्षिण में। अब की बार विनोबा जी ने उसे समझाते हुए कहा कि अभी तुम कह रहे थे कि मैं जो कहता हूँ, सच होता है। तो जो हिमालय उत्तर में है, वही दक्षिण में कहाँ से आ गया। इसलिए ध्यान रखो, तुम्हारी बात तभी सही हो सकती है, जब वह दूसरों को ध्यान में

रखकर कही गई हो। सोचा तो समग्र के आधार से ही जाता है किन्तु कहने में अपनी बात पर बल दिया जाता है। यही अज्ञानता की परिणति है।

भगवान महावीर कहते हैं - सत्य विराट है। यदि सत्य को समझना चाहते हो तो व्यापक दृष्टि बनानी पड़ेगी और आग्रह की भूमि से तुम्हें ऊपर उठना पड़ेगा। यह धारणा हटा दो कि मैं ही सही हूँ। आजकल आप सबके जीवन में जो झगड़े होते हैं उन सबके पीछे केवल यही होता है कि हम अपने आपको सही और सामने वाले को गलत मानने लगते हैं। जैसे हमारा नजरिया सामने वाले के लिए गलत हुआ, तो वह कितना भी अच्छा क्यों न हो हमारे लिए वह भी गलत हो जाता है। तब हम उसकी अच्छाईयों का लाभ नहीं ले पाते।

भगवान महावीर कहते हैं - हो सकता है कि वह तुम्हारी नजर में थोड़ा गलत हो। यदि तुम उसकी नजर से देखने लगे तो तुम भी अपने आपको गलत साबित कर लोगे। किसी की नजर में वह अच्छा भी हो सकता है।

सत्य वही है, शैली में फेर

जब विवेकानन्द अमेरिका में अपना उद्बोधन देने के लिए गये तो उनके मुख से एक वाक्य निकला - ‘फिफ्टी परशेंट अमेरिकन आर फूल्स’। भरी सभा में किसी को मूर्ख कहने से स्वाभाविक है खलबली मच गई। विवेकानन्द जी ने स्थिति को भाँपा और तुरन्त अपने वाक्य को संशोधित करते हुआ कहा - ‘आई रिसर्टिफाई सेन्टेंशज, देट फिफ्टी परशेंट अमेरिकन आर वाइज’। क्या हो गया? जो बात पहले कही गई थी, उसी बात को अब कहा गया है, किन्तु सन्दर्भ को समझिये। यह हमारे जीवन से जुड़ी हुई बात है। इसलिए केवल अपनी बात का आग्रह करना छोड़ें। मेरा सो खरा नहीं अपितु जो खरा सो मेरा मानें।

भगवान महावीर कहते हैं - **सत्य का उपासक वह नहीं जो कहता है ‘मेरा सच है, अपितु सत्य का उपासक वह है जो कहता है खरा सो मेरा है।’** इस तरह यदि जीवन में आग्रह नहीं होगा, जहाँ कहीं आग्रह नहीं होगा तो जीवन में कभी भी असंतुलन पैदा नहीं हो सकता। लेकिन कई-कई बार व्यर्थ के आग्रह में बड़े-बड़े झगड़े हो जाते हैं।

सूत न कपास

ट्रेन में लोग सफर कर रहे थे। खिड़की के बगल में एक व्यक्ति बैठा था। वह बार-बार खिड़की को बन्द कर रहा था। उसके बगल में जो व्यक्ति बैठा था, वह कहता था - मुझे गर्मी लग रही है, खिड़की खोलो। और यह कह रहा था कि मुझे सर्दी लग रही है खिड़की बन्द कर दो। इस प्रकार दोनों में तनातनी हो गई। टी० टी० वहाँ पहुँचा, उसने पूछा - क्या बात है भाई! तुम लोग क्यों झगड़ रहे हो? पहला व्यक्ति बोला - भाई ठंड लग रही है इसलिए खिड़की बन्द होना चाहिए। दूसरा बोला - मुझे गर्मी लग रही है, इसलिए खिड़की को क्यों नहीं खोलूँगा। टी० टी० ने कहा - भईया देख तो लो, खिड़की में काँच है भी या नहीं? और देखा तो खिड़की में काँच था ही नहीं। इस सबके पीछे अकड़ होती है, और अकड़ के कारण ही झगड़े होते हैं।

भगवान महावीर कहते हैं - इस अकड़ को छोड़ दो। तुम देखो तो कि जिसके लिए तुम लड़ रहे हो, उसका कुछ बजूद भी है या नहीं? व्यर्थ की बेवकूफी से बचो। अक्सर ऐसा ही होता है कि हम अपने आपको बुद्धिमान मानते हैं, जबकि कहीं-कहीं बुद्धिमान लोग बड़ी से बड़ी बेवकूफी का उदाहरण बन जाते हैं। एक विचारक ने लिखा है, जो आज के लोगों की स्थिति पर चोट करता है - कुछ लोग बातें तो बुद्धिमानों जैसी करते हैं और व्यवहार पागलों की तरह करते हैं। उसका कारण केवल यही है कि हमने बुद्धिवाद को प्रधानता दी है। हमने तर्क को प्रधानता दी है। जीवन के मूल सम्बन्ध को नज़रअंदाज़ कर दिया है। जो हमारे जीवन के विकारी तत्त्व हैं, उनको हमने प्रमुखता दी और जिससे हमारे जीवन में समरसता आती है उन्हें हमने गौण करना शुरू कर दिया है। जब तक हमारी दृष्टि वहाँ नहीं जाती, तब तक हम अपने जीवन का कल्याण नहीं कर सकते हैं।

पति-पत्नी अपनी भावी संतान के भविष्य के विषय में विचार कर रहे थे। पत्नी ने कहा मैं तो अपने बेटे को डाक्टर बनाऊँगी। पति ने कहा - डॉ० तो आज गली-गली फिरते हैं। मैं उसे साइंटिस्ट बनाऊँगा। पत्नी ने कहा - ऐसा कैसे हो सकता है? मैंने कब से सोच रखा है कि बेटा होगा तो उसको डॉक्टर बनाऊँगी। पति

ने कहा - क्या मतलब, बेटे पर पहला अधिकार बाप का होता है। मैं उसे साइंटिस्ट ही बनाऊँगा। देश-विदेश में उसका नाम होगा। पत्नि-पति दोनों अपनी बात पर अड़ गये। अब दोनों में तूँ-तूँ मैं-मैं हो गयी।

बीच में एक प्रसंग याद आ रहा है, कि तूँ-तूँ, मैं-मैं कैसे शुरू होती है? आज व्यक्तियों की अपनी अज्ञानता के कारण कैसे सम्बन्धों में कड़वाहट होती है! तीन शब्द हैं - परिचय, परिणय और परिणाम।

मेरी दृष्टि से परिचय का अर्थ है तूँ-मैं। परिणय का अर्थ है - तूँ-मैं और मैं-तूँ। परिचय में मात्र तूँ और मैं की पहचान होती है, जबकि परिणय में दोनों एक हो जाते हैं तूँ-मैं और मैं-तूँ। लेकिन इनका नतीजा या परिणाम क्या होता है? तूँ-तूँ, मैं-मैं। अर्थात् छोटी-छोटी बातों को लेकर ही झगड़े होते हैं।

पति-पत्नी के मध्य स्थिति यहाँ तक बढ़ गई कि दोनों में हाथापाई भी होने लगी। दोनों के बीच इतनी दूरी हो गई कि परस्पर में बोलचाल ही बन्द हो गयी। अन्ततः समस्या कोर्ट तक पहुँच गयी। जब मामला कोर्ट में गया तो जज ने दोनों की दलीलें सुनी। जज बहुत समझदार था। जज ने मामले की गंभीरता को समझा। कहा ठीक है - हम एक काम करते हैं कि बेटे की भी राय ले लेना चाहते हैं कि वह क्या बनना चाहता है। जज की बात को सुना तो दोनों एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। कारण बेटा अभी पैदा ही नहीं हुआ था। जो बेटा अभी पैदा ही नहीं हुआ उसके पीछे आग्रहशील बुद्धि हो जाने से यही परिणति होती है।

भगवान महावीर कहते हैं - **आग्रह हो भी तो समन्वयमूलक होना चाहिए। एकान्त आग्रह कभी काम का नहीं होता। वह तो कदाग्रह कहलाता है।** दुनिया में बहुत से ऐसे कदाग्रही लोगों की भरमार है। एक व्यक्ति ने कहा मैं जहाँ हूँ वहीं धरती का केन्द्र है। विश्वास नहीं हो तो नापकर देख लो।

भगवान महावीर की अनेकान्तात्मक दृष्टि को अपने जीवन व्यवहार में उतारिये। अर्थात् कुछ काम अपने मन से करें और कुछ काम सामने वाले के मन से कीजिए। जब आप केवल अपनी बात करेंगे तो तनातनी होगी ही। जब सामने वाले की बात को साथ लेकर चलेंगे तो आपके जीवन में मधुरता आयेगी।

तारों को इतना मत खींचें

तार को केवल एक तरफ खींचते चले जाओगे तो तार टूट जायेगा। और जब तारों को एक निश्चित सीमा में खींचोगे और तब हाथ को चलाओगे तो वह सितार बन जायेगा। सामने वाले का ध्यान रखना चाहिए। अनेकान्त सामंजस्य की ही बात करता है, संघर्ष की नहीं। अनेकान्त हमें प्रेरणा देता है कि सामने वाले से विरोध नहीं अविरोध बनाकर चलें। एडजेस्टमेंट होना चाहिए। सामंजस्य होना चाहिए। चाहे मामला पति-पत्नि के सम्बन्ध का हो या पिता-पुत्र के सम्बन्ध का। भाई-भाई के सम्बन्ध की बात हो या चाहे समाज की बात हो या राष्ट्र की बात हो। एडजेस्टमेंट होना चाहिए। ऐसा होना बहुत जरूरी है।

सितार से संगीत कब फूटता है ? जब सातों तारों में इंटरनल सामंजस्य होता है। सात तार अलग-अलग होते हैं, लेकिन इसके बावजूद उन सातों तारों में आन्तरिक सामंजस्य बना रहता है। सामंजस्य होगा तो संगीत होगा। यदि सामंजस्य नहीं है तो सिरदर्द होगा। **यदि आपने अपने जीवन को सामंजस्य से जीने की कला सीख ली तो आपके जीवन में सदैव मधुर संगीत प्रस्फुटित होगा। और यदि सामंजस्य खो दिया तो सब कुछ होने के बाद भी सिरदर्द बना रहेगा।** उससे बच नहीं सकते।

कुछ थोड़ा हम झुकें, कुछ थोड़ा आप

भगवान महावीर कहते हैं - केवल अपने मन की बात मत सोचो, सामने वाले के मन की बात को ध्यान में रखकर चलो। इसी से एडजेस्टमेंट होगा। यह कब होगा ? जब हमारा दृष्टिकोण समझौतावादी होगा। टकराव की नीति को टालिए। समझौता का रास्ता अपनाइये। आप देखिए, आपके रोजमर्रा के जीवन में कितनी बार टकराव की स्थितियाँ निर्मित होती हैं। और यदि टकराव होता है तो उसका परिणाम कितना विकृत होता है। यदि वहाँ अपनी ओर से थोड़ी-सी समझदारी का परिचय दिया जाय तो टकराव टल भी सकता है। यदि थोड़ा-सा समझौतावादी दृष्टिकोण विकसित हो जाए तो बड़े से बड़े झगड़े को सरलता से दूर किया जा सकता है। यदि यह दृष्टिकोण नहीं अपनाते हैं तो हमारे जीवन में सिवाय अशान्ति के और

कुछ भी नहीं मिलता। समझौतावादी दृष्टिकोण अपनाते से बिगड़ी हुई स्थिति भी कैसे बदल जाती है, मैं आपको एक उदाहरण से बता रहा हूँ।

पति और पत्नि के बीच तनातनी हो गई और पत्नि नाराज हो गई, जैसा कि अकसर होता है। पत्नि ने कह दिया - ठीक है यदि तुम ऐसा करोगे तो मैं मायके चली जाऊँगी। अब क्या था ? पति ने मामले की गंभीरता को समझा, वह बहुत समझदार था भी। उसने तुरन्त अपना रुख लचीला किया और बात को संभालते हुए कहा - ठीक ही है तुम अपने मायके हो आओ। पप्पू भी इसी बहाने ननिहाल हो आएगा और मैं भी इसी बहाने ससुराल घूम लूँगा। मामला समझ में आ गया। तीनों की बात हो गई। यही है अनेकान्तात्मक दृष्टि। इसे आप आत्मसात् कर लें। इसके ही अभाव में आपके रिश्तों में बिगाड़ आता है, इसके समझ लेने से शान्ति का मार्ग मिल सकता है। मैं तो कहता हूँ कि यह सूत्र टकराव की नीति को टालने और समझौते का मार्ग अपनाने का है। लेकिन ध्यान रखिए। मेरे कहने से केवल टकराव टलते नहीं, कहने से समझौते का रास्ता अपनाया नहीं जाता।

बुद्धि सीमित हानि-लाभ तक

आज एक-दूसरे के बीच टकरावपूर्ण परिस्थितियाँ क्यों बनती हैं ? वह ईगो प्राबलम्ब है। ईगो टकराते हैं। ईगो को कौन जन्म देता है ? बुद्धि। आज बुद्धिवाद का बहुत तेजी से विकास हो रहा है। हम बौद्धिक युग में जी रहे हैं। हर चीज को बौद्धिकता के स्तर पर नापते हैं। इससे क्या असर हुआ ? बुद्धि तो बढ़ गई और भावनार्यें सूख गई। हम यह भूल जाते हैं कि बुद्धि से ग्राहक को चलाया जा सकता है, बुद्धि से व्यापार और संसार को चलाया जा सकता है, लेकिन परिवार को नहीं। **परिवार को केवल भावना के बल पर चलाया जा सकता है। वहाँ अपने और पराये का ध्यान रखा जाता है। लाभ और नुकसान का नहीं।** इसलिए बुद्धिवाद के अहंकार से अपने आपको ऊपर उठाईये और जीवन में भावना का रस बढ़ाईये। कर्तव्य को प्रधानता दीजिए, अधिकार को गौण कर दीजिए। जीवन आपका शान्ति का मन्त्र बन जायेगा, फिर जीवन की सारी अशान्ति सहजता से दूर हो जायेगी।

बन्धुओं, हम सब अनेकान्त के गीत गाते हैं, पर यह सारा जीवन दर्शन भगवान महावीर के अनेकान्तमूलक दृष्टि को आत्मसात् करने से सहजता से प्रकट हो जाता है। दार्शनिक स्तर पर अनेकान्त की मीमांसायें तो हमने खूब की और सुनी भी हैं। पर बन्धुओं, जीवन व्यवहार के क्षेत्र में अनेकान्त को कैसे अपनाया जाय, जब तक इसे ठीक ढंग से नहीं समझोगे तब तक अपने जीवन को शान्ति से बिताने का सौभाग्य नहीं पा सकोगे। इसलिए कर्तव्य को प्रमुखता दीजिए, भावना को नहीं। बुद्धि हर चीज का पोस्टमार्टम कर देती है। वह लाभ और नुकसान के हिसाब से तथा अपने और पराये को प्रमुखता से देखती है। जबकि यदि कोई अपना है तो उसके निमित्त से नुकसान हो तो उसे लाभ माना जाता है। क्योंकि हम हो या सामने वाला, यदि अपनों के लिए लाभ पहुँचता है तो हमारा नुकसान भी लाभ समझना चाहिए। दोनों में बड़ा अन्तर है।

दें भावनाओं को विस्तार

जो आपका अच्छा ग्राहक होता है, जिससे रोजमर्रा का काम है, आप उसको क्या करते हैं? ग्राहक को पसंद करते हैं। लेकिन अपने माँ-बाप या बीबी-बच्चों को क्या करते हैं? क्या इन्हें भी पसंद करते हैं? इन्हें तो प्यार करते हैं। इसे ऐसे समझिये - ग्राहक कितना ही अच्छा क्यों न हो, उसे 'लाईक' ही किया जाता है, 'लव' नहीं। और तुम्हारा बेटा कितना ही बुरा क्यों न हो, वह 'लाईक' करने के लायक नहीं होता, उसे तो 'लव' ही किया जाता है। इसलिए अपनों से 'लव' करो और बाकी को 'लाईक' करो। हम उनके प्रति स्नेह का भाव बनाएँ। ये स्नेह का भाव कब विकसित होगा? जब हम भावनामूलक जीवन जीयेंगे। भावना का विस्तार चिन्तन की व्यापकता से संभव है। जबकि आज हमारी सोच संकीर्ण हो गयी है।

भगवान महावीर कहते हैं - व्यापक सोच के स्वामी बनें, विशालता को देखें। केवल अपने ही इर्द-गिर्द न देखें। जिस क्षण आपके चिन्तन में व्यापकता आयेगी, उसी क्षण जीवन में मधुरता का संचार हो जायेगा। देखिए व्यापकता अशान्ति को कैसे टालती है। मुझे एक ऐतिहासिक घटना स्मरण में आ रही है।

चिन्तन की व्यापकता

महाराज रणजीत जी का नाम आप सबने सुना होगा। पंजाब के महाराजा रणजीतसिंह बहुत ही प्रसिद्ध राजा हुए हैं। उनके राज्य में एक बार ऐसा हुआ कि मुसलमानों के मुहर्रम का जुलूस निकल रहा था। ताजिया निकाले जा रहे थे। जिस रास्ते से वह जा रहा था, उस रास्ते पर एक पीपल का पेड़ पड़ता था। जिसके नीचे मन्दिर था। ताजिया की ऊँचाई कुछ ज्यादा थी, जिससे कि उस पेड़ की डाली ताजिये से टकराने की स्थिति में थी। बहुत बड़ी समस्या उत्पन्न हो गयी। मुसलमान कहने लगे कि - हम अपना ताजिया यही से निकालेंगे। दूसरी तरफ हिन्दु समूह के लोग इकट्ठे हो गये। उन्होंने कहा - कुछ भी हो, पेड़ नहीं कटेगा। ताजिया यहाँ से निकले या नहीं। समस्या बड़ी ही अप्रिय हो उठी। लोग तलवारें तान के खड़े हो गए। क्या किया जाए? पेड़ को काटे बिना ताजिया निकल नहीं सकता और पेड़ की एक भी डाल को काटने के लिए दूसरा पक्ष तैयार नहीं। मुसलमान भी ताजिया को लौटाने को तैयार नहीं।

बात महाराज रणजीतसिंह के पास पहुँची। रणजीतसिंह जी एक धर्मनिष्ठ राजा थे। वे हर वर्ग-धर्म-सम्प्रदाय के मान्य थे तथा उन्हें समाधान देते थे। उन्होंने स्थिति की गंभीरता को समझा और व्यापक सोच के एक अच्छे उदाहरण बन गए। वे वहाँ बीच में गये और हिन्दु तथा मुसलमान सम्प्रदाय के लोगों से कहा आप लोग पाँच-सौ पाँच-सौ हाथ पीछे हो जाएँ। दोनों तरफ के लोग राजा की आज्ञा से पाँच-सौ हाथ पीछे हो गए। रणजीतसिंह जी ने 200 मजदूरों को बुलवाया और धरती को खुदवाना शुरू कर दिया। धरती को एक फुट खोदा गया, जिससे ताजिया आसानी से निकल गया। न ताजिया झुका, न पेड़ टूटा। इसी को व्यापकता कहते हैं। ऐसी व्यापकदृष्टि जिसके जीवन में होती है, वे बड़े-बड़े तनाव के कारणों को सहजता से दूर करने में समर्थ हो जाते हैं। इसलिए मैंने कहा व्यापकदृष्टि के स्वामी बनिये। आज बहुत ज्यादा टकराव है। टकराव का प्रमुख कारण है सोच की संकीर्णता।

सामंजस्य बहुत जरूरी

आज की सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्या है नई और पुरानी पीढ़ी में, बुजुर्ग और युवक वर्ग में सामंजस्य नहीं है। दोनों को साथ लेकर नहीं चल सकते। अत्यधिक मन-मुटाव है। मैं खास कर युवाओं से यह कहना चाहता हूँ, कि सामंजस्य बनाकर चलना जरूरी है। एक बात ध्यान रखना जो बुजुर्ग हैं उनका अतीत बहुत लम्बा है और भविष्य बहुत छोटा है। जिनका लम्बा अतीत व्यतीत हो गया उनमें परिवर्तन की संभावना बहुत कम होती है। तुम युवा हो, तुम्हारा अतीत छोटा है और भविष्य बहुत लम्बा है साथ ही तुममें अपने आपको आसानी से परिवर्तित करने की संभावनाएँ भी हैं। इसलिए सामने वाले को परिवर्तित करने की बजाय यदि स्वयं को परिवर्तित कर लो, तो बहुत कुछ कामयाबी पा सकते हो। अब देखो, यदि ट्रेन में 36 घण्टे का सफर कर रहे हैं, इस दौरान कोई व्यक्ति आ जाता है जिसको मात्र 4-5 घण्टे का सफर तय करना है, तो आप उसको एडजेस्ट करते हो कि नहीं? क्या सोचकर करते हो कि थोड़ी देर की बात है। उसको एडजेस्ट करने में कोई असुविधा महसूस नहीं होती। अतः मैं उन युवाओं से कह रहा हूँ जो अपने बुजुर्गों के स्वभाव के कारण उनको एडजेस्ट न कर पाने के कारण मन को तनावग्रस्त रखते हैं। **अरे भैया, 4 घण्टे के लिए अनजाने व्यक्ति को सीट दे सकते हो, तो तुम्हें जिसने जन्म दिया, जीवन दिया, संस्कार दिये, उनके लिए अनुदार क्यों? उनके प्रति दृष्टि होनी चाहिए।** उनको अपना लीजिए, थोड़े समय की बात है।

जीवन का यह सफर सदा ही दो व्यक्तियों के साथ चलना होता है। साथ चलने के लिए बहुत से समझौते करने होते हैं। आपने देखा कि यदि 30 साल का पिता अपने पाँच साल के बेटे को साथ लेकर चलाता है तो वह क्या करता है? उसे अपनी गति को कम करनी पड़ती है। क्योंकि पाँच साल का बेटा तीस साल के युवक के साथ नहीं चल सकता। दोनों की उम्र में 25 साल का अन्तर है। वैसे ही 60 साल का पिता भी अपने 30 साल के बेटे की चाल से कैसे चल सकता है। मुझे यह समझ में नहीं आता कि आज का युवा अपने बेटे की चाल से चलने को तैयार है पर अपने पिता की चाल से वह क्यों नहीं चलना चाहता?

उनकी गति मन्द है और तुम्हारी तेज है, तो घबराइये नहीं, अपनी गति को थोड़ा मन्द कर दीजिए। मार्ग केवल यही है। इसके अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग नहीं है। यह तभी संभव होगा जब हमारा चिन्तन व्यापक होगा। लेकिन क्या करें? पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी में जो असामंजस्य है वह मात्र इसलिए है कि नयी पीढ़ी शक्ति को देखती है। जबकि आज की शक्ति के महल को खड़ा करने में कल की शक्ति ने जो श्रम किया है उसे वह अनदेखा कर देती है। संत कहते हैं - जो आज की शक्ति का महल है वह कल के श्रम की नींव पर खड़ा होता है। नयी पीढ़ी के पास शक्ति तो है, अनुभव नहीं है। पुरानी पीढ़ी के पास अनुभव का विशाल कोष है लेकिन शक्ति नहीं है। सच है अनुभव के बिना शक्ति पैशाचिकता की छाया बन जाती है और शक्ति के अभाव में अनुभव केवल कमजोर की लाठी बनी रहती है। दोनों का संतुलन बनाकर चलना चाहिए। जब दोनों पीढ़ी के साथ ऐसा सामंजस्य बनेगा, तभी घर-परिवार और समाज के लोगों में सच्चे अर्थों में शान्ति होगी।

परिस्थितियाँ प्रतिकूल हों, तब भी उन्हें अनुकूलता दें

चौथी बात और आपसे कहना चाहता हूँ - प्रतिकूलता में अनुकूलता निकालना चाहिए। अनेकान्त हमें यह सिखाता है। जो प्रतिकूल है, उसे अनुकूल बनाओ। हमारी कुशलता यही है। थोड़ा सा नजरिया बदल लेंगे, तो प्रतिकूल भी बहुत सहजता से अनुकूल बन सकता है। नजरिया बदल लेंगे तो अनुकूल भी प्रतिकूल बन जाता है।

आज से कुछ वर्षों पहले म. प्र. के रीवाँ स्टेट में जैनियों का विमान यानी शोभायात्रा का उत्सव था। कुछ विघ्नसंतोषियों व साम्प्रदायिक मोह में अंधे बने हुए लोगों के विरोध से वहाँ जैनियों को निकलने ही नहीं दिया जाता था। जबकि उस समय रीवाँ में लगभग 50 परिवार रहा करते थे। जैनियों का मन इससे बहुत आहत था। एक बार पूरे अंचल के जैनियों ने अर्थात् महाकौशल और विन्ध्य प्रान्तक्षेत्र के जैनियों ने मिलकर तय किया कि इस वर्ष हम सबको महावीर जयन्ती रीवाँ में मिलकर मनानी है। साथ ही शोभायात्रा भी निकालनी है। रीवाँ के राजा से समाज के लोगों ने अनुमति ले ली। राजा की आज्ञा भी मिल गई। जुलूस निकाला

गया, लेकिन इससे विघ्नसंतोषियों का असंतोष और बढ़ गया। उन्होंने प्रतिक्रिया स्वरूप हडताल कर अपने-अपने प्रतिष्ठान बन्द कर दिये। भगवान महावीर की शोभायात्रा निकली, सारे इलाके के जैनी उसमें शामिल थे। पंडित जगमोहनलाल जी ने स्वयं मुझे यह घटना सुनाई थी। वे ही प्रथम वक्ता के रूप में वहाँ उपस्थित हुए। उन्होंने कहा - जैसे ही मैं माईक पर खड़ा हुआ, मुझे अपने गुरु की बात याद आयी, कि परिस्थितियाँ विपरीत हों तो प्रतिकूल की अनुकूल व्याख्या कर लो। उन्होंने अपनी बात कुछ इस तरह से कहनी शुरू की कि हम सब भगवान महावीर की जयन्ती मना रहे हैं। आज सम्पूर्ण देश में उनकी जयन्ती मनाई गयी। शायद ही पूरे देश में इस नगर जैसी महावीर जयन्ती मनाई गयी होगी। सब लोग देखते रह गये, क्या कह रहे हैं पण्डित जी। पर पण्डित जी ने अपनी बात को जारी रखते हुए कहा - हम सब जहाँ भी जयन्ती मनाते हैं। उस दिन केवल जैन ही अपने प्रतिष्ठान बन्द रखते हैं। लेकिन यहाँ तो रीवाँ ने जैन-अजैन सभी ने भगवान महावीर के प्रति अपनी श्रद्धा अपने प्रतिष्ठान बन्द रखकर व्यक्त की।

प्रतिकूलता की अनुकूल व्याख्या करना सीखिए। अनेकान्तात्मक नज़रिया है तो ऐसा करने में आप निष्णात हो सकते हैं। आपके चित्त में कभी अशान्ति नहीं होगी। बन्धुओं, हमारे तीर्थकरों ने जो उपदेश दिए हैं वे शास्त्रों की पोथियों के लिए नहीं हैं। वे जीवन में उतारने के लिए हैं। जितनी भी बातें कहीं हैं केवल उनकी प्रतिष्ठा दार्शनिक मीमांसा के लिए नहीं है। वे हमारे जीवन के आदर्श बनाने के लिए हैं। जैनधर्म और दर्शन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहाँ केवल आदर्श की बात नहीं कही जाती अपितु व्यवहार की भी बात साथ में रहती है। अपने जीवन का रूपान्तरण करना चाहते हो तो इन सूत्रों को सुनें, समझें और आत्मसात् करने की कोशिश करें। इससे बेशक जीवन ही निहाल हो जाएगा।

वैचारिक तरलता लाये जीवन में सरलता

बन्धुओं, अनेकान्त का मतलब है वैचारिक सहिष्णुता। आज हर व्यक्ति में वैचारिक सहिष्णुता की बहुत कमी होती जा रही है। हम अपनी बात पर आ जाते हैं। जहाँ जरूरत है तो ठीक है, लेकिन बे-मतलब की बातों में अड़ना समझ से परे

दिखता है। इसलिए जहाँ जैसी आवश्यकता हो वहाँ अपना वैसा काम करिए। प्रसंग और परिस्थिति को देखकर चलिए।

भगवान महावीर कहते हैं - केवल अपनी ही बात का आग्रह मत करो, सामने वाले की बात का आदर करना सीखो। आचार्य महाराज दो शब्दों से बहुत अच्छे से अनेकान्त के रहस्य को समझाते हैं। एक शब्द है 'ही' और दूसरा है 'भी'। दोनों ही जाने पहचाने शब्द हैं। लेकिन 'ही' में एकान्ताग्रह है कि मैं ही सही हूँ। लेकिन 'भी' में मैं भी सही हूँ और तुम भी सही हो। 'ही' में के आग्रह से ऊपर उठकर अनन्त आकाश में अपना हाथ फैलाईये और सबका समादर करते जाईये, सच्चे अर्थों में आप अनेकान्त के उपासक तभी कहलाओगे। इसका मतलब यह मत लेना कि फिर जैनदर्शन अपने आपमें कोई दर्शन ही नहीं है। सबको मिला देने का नाम जैनदर्शन नहीं है।

प्रत्येक चीज़ का अपनी-अपनी जगह महत्त्व होता है। हर व्यक्ति का, हर वस्तु का अपनी-अपनी जगह महत्त्व होता है। इस भावबोध को समझने का मतलब ही है अनेकान्त।

ही से भी की ओर बढ़े सभी हम लोग।

छह के आगे तीन हों विश्व शान्ति का योग ॥

देखो, 6 के आगे तीन होता है तो क्या होता है? 63 बनता है। अर्थात् छह तीन का आदर करता है। और 3-6 का आदर करता है। इसीलिए 63 शलाका पुरुष का प्रतीक बन जाता है। 6 और 3 जहाँ एक दूसरे का हाथ मिलाने को तैयार हैं वहाँ 63 ही होते हैं। लेकिन पलट दो तो 3 के आगे 6 होने पर 36 का आंकड़ा बन जाता है।

देख लो, तुमने भी जो अपने सम्बन्ध अपनो के साथ स्थापित किये हैं वे 6 3 जैसे हैं या 36 जैसे। अगर 36 जैसे हैं तो आज ज्यादा कुछ करने की जरूरत नहीं, मात्र 3 और 6 की पीठ को पलटने की जरूरत है। एक दूसरे को पीठ दिखाने की जगह एक दूसरे को मुँह दिखाना शुरू कर दिया जाय तो सारा काम हो जाय। लेकिन करें क्या? इसमें बाधक है हमारा अभिमान। मनुष्य का गर्वोन्मत्त विचार कहीं का

नहीं रहने देता। उसकी स्थिति बड़ी दयनीय बन जाती है, इसलिए इस अभिमान से अपने आपको मुक्त कीजिए, जीवन की वास्तविकता को समझिये, उसे समग्रता से आत्मसात् करने का प्रयास कीजिए। निश्चित रूप से हमारा जीवन निहाल हो जाएगा। यदि हम ऐसा नहीं समझते, नहीं कर पाते हैं तो हमारे जीवन में कोई भी सार्थक उपलब्धि घटित नहीं हो सकती।

उनसे समन्वित भाव हों

बन्धुओं, भगवान महावीर कहते हैं - अनेकान्त को व्यवहारिक रूप में अपनाओ। उन सूत्रों को धीरे-धीरे आत्मसात् करो। वैचारिक सहिष्णुता बहुत जरूरी है। दूसरों के विचारों को सहने पर ही हम वैचारिक स्तर पर अहिंसक होंगे। जब हमारे अन्दर वैचारिक समता होगी, तभी समता से सहिष्णुता का विकास होगा। एक बात ध्यान रखना, जो धूप सहता है, वही छाया दे सकता है। जो जितना सहिष्णु होता है, वह उतना ही अधिक महान होता है। नजरिया थोड़ा सा बदल दो तो बिगड़ी हुई परिस्थितियाँ अपने आपमें अनुकूल बन जाती हैं। देखिए, सहिष्णुता का कितना अच्छा परिणाम होता है, एक छोटा-सा उदाहरण देना चाहता हूँ -

घर में बहु आई। बहु अत्यन्त सुशील, शान्त थी। लेकिन सास बहुत ज्यादा विपरीत स्वभाव की थी। बहु के आने पर दो-तीन दिन तो मुँह दिखाई का कार्यक्रम चला। चौथे दिन से वह अपने पर आ गई। बहु से सीधे मुँह बात नहीं करती। बहु बहुत शान्त थी, किसी प्रकार की प्रतिक्रिया ही नहीं करती। सास ने यदि कुछ कहा तो बहु ने चुपचाप सुन लिया। लेकिन सामने वाला लड़े न तो लड़ने का मजा कैसे आये। लगी मन ही मन कहने - कलमुही के मुँह में जीभ ही नहीं है। बोलती ही नहीं है, परमात्मा का मुझसे कौन सा बैर था, जो पत्थर की पुतली को मेरे घर में ठेल दिया। अरे धरती में भी पैर मारो तो आवाज आती है। यह तो हिलती तक नहीं। सामने वाले से कोई जबाब नहीं। एक दिन जब इसी तरह से अपनी बहु से कुछ बोल रही थी तभी पड़ोस की एक महिला ने इन बातों को सुन लिया और उससे सहा नहीं गया। उसने सास को ललकारते हुए कहा - अरे, लड़ने की ज्यादा इच्छा है तो मुझसे लड़, यह गौ जैसी बहु तेरे घर आ गई और तू उससे लड़ रही है। दूसरी आती तो समझ में आती। आ मुझसे लड़, अभी मजा चखाती हूँ।

लेकिन तभी बहु ने आगे बढ़कर जो बात कही, वह विशाल नज़रिए और सहनशीलता का एक आदर्श उदाहरण बन गया। उसने कहा - चाची जी ऐसा मत बोलिये, ये तो मेरी माँ हैं। और मैं उनकी बेटी हूँ। माँ यदि अपनी बेटी की गलतियाँ नहीं बताएंगी तो और कौन बतायेगा? ये माँ मुझे डाँट नहीं रही हैं। ये तो मेरी गलतियाँ बताकर रास्ते पर ला रही हैं। आप मुझे माफ़ कीजिए। आज के बाद आप मेरी माँ के सन्दर्भ में ऐसा मत कहिएगा।

जब ये वाक्य सास ने सुने तो उसका हृदय परिवर्तित हो गया। उसने सोचा - अरे यह कितने विशाल विचार और दृष्टि वाली है और मैं कैसी नीच बुद्धि वाली हूँ। धिक्कार है मुझे। इस थोड़ी सी सहनशीलता से सारा बिगड़ा हुआ माहौल सुधर गया।

बन्धुओं, यह कुछ छोटी-छोटी-सी बातें हैं, जिनको यदि हम अपने रोज़मर्रा के जीवन में उतारकर शुरू कर लें तो हम सबके जीवन का सुनिश्चित रूप से कल्याण होगा।

इच्छाओं का करें अन्त

तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः

**एसो पंचणमोयारो सव्वपावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होइ मंगलं ॥**

एक राजा ने किसी पहुँचे हुए संत के चरणों में उपस्थित हो उनसे अपने घर में आकर भिक्षा ग्रहण करने का निवेदन किया। संत ने राजा की प्रार्थना को स्वीकारा। अगले दिन संत उसके महल में उपस्थित हो गए। राजा ने आत्मीय अभिनन्दन किया। उनकी पूजा-वन्दना कर उन्हें भिक्षा ग्रहण करने को कहा। संत ने कहा - मैं भिक्षा तो लूँगा लेकिन अपने पात्र में लूँगा। राजा ने स्वीकार कर लिया। प्रभु जैसी आपकी इच्छा, पर भिक्षा तो ग्रहण कर लें। संत ने अपना कटोरा बढ़ाया और राजा से कहा - बस ये मेरा कटोरा है। इस प्रमाण मुझे भिक्षा ग्रहण करना है। राजा ने खीर तैयार करवाई। जब खीर तैयार हो गई तो राजा ने उस कटोरे में खीर डाली। किन्तु आश्चर्य कि पूरी खीर ही उस कटोरे में चली गई किन्तु वह खाली का खाली रहा। राजा हतप्रभ रह गया। कटोरा भर नहीं पा रहा था। जैसे-तैसे बहुत भाग्य से तो सद्गुरु का महल में आगमन हुआ। फिर भी मैं अपने घर अभ्यागत संत का आतिथ्य नहीं कर पा रहा हूँ। राजा की स्थिति अत्यन्त असमंजस में दिख रही थी। राजा ने और खीर तैयार करवाई लेकिन वह खीर भी उस कटोरे में समा गयी। कटोरा अब भी खाली का खाली था। राजा किंकर्तव्यविमूढ होकर संत के चरणों में गिर पड़ा और पूछता है - गुरुदेव ! यह कटोरा कब और कैसे भरेगा ? संत ने कहा- यह कटोरा कभी नहीं भरेगा। राजा की आँखें फटी की फटी रह गई। विस्मय से युक्त होकर राजा ने संत से पूछा - गुरुदेव ! कटोरा क्यों नहीं भरेगा। यह किस धातु का बना है ? संत ने सहजता से कहा - राजन् ! यह कटोरा कभी नहीं भरेगा ? क्योंकि यह मनुष्य के मन का कटोरा है। **धातु का कटोरा भर सकता है, पर मनुष्य के मन का कटोरा कभी नहीं भर सकता।**

सच में मनुष्य की परिस्थितियाँ ही ऐसी हैं। उसके मन की तृष्णा को कभी पूरा नहीं किया जा सकता। जीवन पर्यन्त हम अपनी तृष्णा को पूरी करने की कोशिश करते हैं। अपनी इच्छाओं-आकांक्षाओं को पूर्ण करने की कोशिश करते हैं, लेकिन उन्हें पूरी करने की कोशिश करने में हमारी जिंदगी पूरी हो जाती है, तब भी इच्छाएँ पूरी नहीं होती। जीवन को दुःखी बनाने वाले कारणों में एक कारण है मन की इच्छा या तृष्णा।

लहरों सी आतीं इच्छाएँ

किसी भी वस्तु के प्रति हमारा ध्यान केन्द्रित होता है। हमारे मन में उनके प्रति आकर्षण से लगाव बढ़ता है। लगाव बढ़ने से उसे पाने की इच्छा जागृत होती है और फिर तृष्णा उत्पन्न होती है। हमारे मन में मोह जन्म लेता है, और वहीं से हमारे मन में दुःख की उत्पत्ति हो जाती है। अन्तर्मन की पीड़ा का यह प्रबल कारण है। यदि हम देखें तो इसके स्थान पर दूसरी इच्छा उमड़ पड़ती है। जैसे सागर में एक लहर उत्पन्न होती है और वह लहर शान्त होने से पहले ही दूसरी लहर को उत्पन्न कर देती है। इसी तरह तीसरी फिर और-और लहरें उत्पन्न होती रहती हैं।

यही स्थिति हमारे मन की है। एक विचार उत्पन्न होता है तो वह दूसरे को उत्पन्न कर स्वयं विलीन हो जाता है। और इस तरह तीसरे, चौथे आदि का क्रम चलता रहता है। इसी तरह इच्छायें मनुष्य के मन में जागृत होती रहती हैं। संत कहते हैं - आज के मनुष्य का दुःख उसकी आवश्यकताओं के कारण नहीं है, अपितु उसकी आकांक्षाओं के कारण है। क्योंकि आवश्यकता बहुत सीमित होती है, लेकिन आकांक्षाएँ अन्तहीन होती हैं। **आवश्यकताओं को बढ़ाना या घटाना मनुष्य के हाथ में है और सरल है। लेकिन आकांक्षाओं को कम करना मनुष्य के लिए बहुत कठिन है।** वे दिनों-दिन वृद्धिगत हो आकुलता प्रदान करती रहती हैं। आकांक्षाएँ हमारे मन को अशान्त करती हैं। संत कहते हैं - वही व्यक्ति शान्त होता है, जिसका मन आकांक्षाओं से रहित होता है। हम अपने मन को आकांक्षाओं से जितना कम करेंगे हमारे चित्त की शान्ति उतनी अधिक बढ़ेगी। हमारे मन में जितनी अधिक आकांक्षाएँ होंगी उतना ही अधिक वह अशान्त होगा।

भगवान महावीर कहते हैं - इच्छा का निरोध करो। तुम्हारे मन में धनैष्णा, पुत्रैष्णा, वित्तैष्णा आदि अनेक ऐषणाएँ हैं। तमाम प्रकार की आकांक्षाएँ हैं, लेकिन तय मानकर चलना कि इनका अन्त कहीं नहीं है। हमें अपने जीवन में जो कमियाँ दिखाई पड़ती हैं, हम उनके विषय में सोचते हैं। इन कमियों के कारण ही जीवन में दुःख होता है। उन कमियों को पूरा करने का प्रयत्न निरन्तर करते हैं। इनमें से कुछ को पूरा कर भी लेते हैं। किन्तु अन्ततः वे कभी पूरी नहीं होतीं, अधूरी ही बनी रहती हैं।

संत कहते हैं- तुम कितना भी प्रयास करोगे किन्तु वह पूरा नहीं हो सकता। भगवान महावीर का तो यह कहना है कि,

‘सुवण्णरूवस्स पव्वया होति केलाससमा असंखया ।

णरस्स लुद्धस्स न हु ते हु किंची इच्छा हु आगाससमा अणंतिया ॥’

मनुष्य के पास कैलाश पर्वत के समान सोने-चाँदी के असंख्य पर्वत भी क्यों न हों तो भी तृष्णा और आकांक्षा में उलझे हुए मनुष्य के मन को कभी शान्ति नहीं मिल सकती। क्योंकि इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त हैं।

आकाश विशाल है, उसका ओर-छोर नहीं है। सुदूर क्षितिज पर देखने पर ऐसा लगता है कि वहाँ धरती और आसमान मिलकर एक हो गए हैं। हम मील, दो मील चलेगे तो वहाँ पहुँच जाएँगे, जहाँ धरती और आसमान मिलकर एक होते हैं। लेकिन हम जितना-जितना चलते हैं, वह क्षितिज उतना ही उतना दूर होता जाता है। बहुत गहरा संदेश छिपा है। यही स्थिति हमारे मन की है।

जितना सींचा इच्छाजल को उतनी धधकी तृष्णा ज्वाला

हम सोचते हैं यदि इतना हम कर लें तो शान्ति मिल जायेगी। लेकिन जब तक हम उतना करने की स्थिति में पहुँचते हैं, तब तक हमारा लक्ष्य उतना ही दूर हो जाता है। कोई हजार चाहता है और जैसे ही वह उसे पूरा करने को होता है कि उसे दस हजार की चाह पैदा हो जाती है। जब दस हजार को पाते हैं तो लाख की, लाख से करोड़, करोड़ से अरब इस प्रकार सारे संसार का स्वामित्व पाने की चाह हमारे मन में जग जाती है। जैसे-जैसे लाभ बढ़ता है, वैसे-वैसे लोभ भी बढ़ता जाता है।

हम जितना-जितना पाते जाते हैं उतनी-उतनी अतृप्ति हमारे मन में बढ़ती जाती है। भगवान महावीर कहते हैं - हमारे जीवन की अशान्ति का यही सबसे बड़ा रहस्य है, पूर्ति के प्रयत्नों से तृप्ति कभी नहीं हो सकती है। तृप्ति पाना चाहते हो तो नियन्त्रण करने का प्रयास करो। इच्छाओं की पूर्ति इच्छाओं की तृप्ति का माध्यम नहीं। इच्छाओं का नियन्त्रण ही इच्छा की तृप्ति का साधन है। जैसे कोई आग से आग बुझाने का प्रयास करे तो उसे क्या कहोगे ? आग से कभी आग नहीं बुझी। आग में यदि कोई घी डाले तो उसे क्या कहेंगे ? आग में घी डालने से कभी आग नहीं बुझती। आग में पानी डालने पर ही आग को बुझाया जा सकता है।

संत कहते हैं - प्राप्ति के प्रयत्नों के द्वारा शान्ति की कामना करना आग से आग बुझाने के समान असंभव है। वस्तुतः यदि तुम अपनी इच्छाओं को स्थायी रूप से तृप्त करना चाहते हो तो उन्हें पूर्ण करने की जगह उनमें संतोष के अमृतजल का छींटा मारना शुरू करो। इससे इच्छाओं की ज्वाला अपने-आप शान्त हो जाएगी। तुम उन्हें जितना-जितना पूर्ण करने का प्रयत्न करोगे, उतनी-उतनी वे बढ़ती हैं। हम पूजा में पढ़ते हैं -

इच्छा को जितना तृप्त करें, उतनी बढ़ती तृष्णा ज्वाला ।

तृष्णा की ज्वाला को जितना ही तृप्त करने का प्रयास करो वह उतनी ही बढ़ती है।

संसार में अनेक प्रकार के गड्ढे होते हैं, जिनको भरा जा सकता है, लेकिन तृष्णा का गड्ढा ऐसा है जिसे कभी भरा नहीं जा सकता। इसकी स्थिति सुरसा की भाँति है। जिसका एक बार मुँह खुलता है तो खुलता ही जाता है। फिर बन्द होने का नाम नहीं लेता। हमारे मन में जब कोई एक चाह उत्पन्न होती है, तो उसको पूरा करने के प्रयत्न में ही उसकी जगह दूसरी, तीसरी और न जाने कितनी-कितनी इच्छायें उत्पन्न होती रहती हैं।

संत कहते हैं - जीवन के इस रहस्य को समझो और जो जितना जैसा है उतने में संतुष्ट रहो। यह तय मानकर चलना कि जो मनुष्य अपनी उपलब्ध स्थिति में संतुष्ट नहीं वह उससे भी संतुष्ट नहीं होगा, जिसको कि वह पाना चाहता है। मेरे

पास जो है उससे यदि संतुष्टि नहीं तो जो भविष्य में पायेंगे उससे संतोष कैसे मिल सकेगा। वस्तुतः जो अपनी वर्तमान स्थिति से असंतुष्ट है वह सदैव असंतुष्ट बना रहता है। जो वर्तमान स्थिति से संतुष्ट है, वह सदैव संतुष्ट बना रहता है। और संतोष ही शान्ति का मूल आधार है। वह संतोष अपनी इच्छाओं के नियन्त्रण के बल पर प्रकट होता है। इच्छाओं की पूर्ति के माध्यम से नहीं।

इच्छाओं का वर्गीकरण

इच्छाएँ तीन प्रकार की होती हैं - १. धनैषणा, २. पुत्रैषणा और ३. लोकैषणा। सबसे पहले मनुष्य अधिकाधिक धन पाने की चाह में पागल होता है। संत कहते हैं - धन तुम्हारे जीवन के निर्वाह का साधन है। धनार्जन करो, मगर धन के पीछे पागल मत हो। पैसे की जितनी जरूरत है, तुम उतना आलम्बन लो। लेकिन एक बात का ध्यान रखो, पैसा जीवन निर्वाह का साधन है, साध्य नहीं। जीवन के गुजारे के लिए पैसा कमाना, तो समझ में आता है लेकिन पैसे कमाने के पीछे सारा जीवन गुजार देना समझ से परे है। याद रखो, पैसे से मूल्यवान जीवन है। यदि पैसा तुम्हारे जीवन के मूल तत्व को प्रभावित करता है तो वह हमारे किसी काम का नहीं। वही पैसा हमारे जीवन के लिए अर्थपूर्ण है, जिस पैसे के माध्यम से हम अपने जीवन को सुविधा और शान्ति से गुजार सकें। जो पैसा तुम्हारे सुख-चैन को, आनन्द को छीन ले, वह पैसा तुम्हारे लिए अभिशाप है। वही पैसा जीवन के लिए वरदान बनता है जो जीवन के कल्याण में निमित्त कहलाता है।

भगवान महावीर ने गृहस्थों को जो उपदेश दिया, उसमें एक बात कही है। वह है - इच्छा का परिमाण करो। एक सीमा में धन रखो। वे धन रखने का निषेध नहीं करते। लेकिन उन्होंने धन की अन्तहीन लालसा को नियन्त्रण में रखने की प्रेरणा जरूर दी है।

भगवान महावीर कहते हैं - बड़े-बड़े धनपतियों की भी इच्छा कभी पूरी नहीं होती। कितना भी पैसा हो। सोने-चाँदी के कैलाशपर्वत भी तुम्हें मिल जायँ, एक-दो नहीं असंख्यात, तो भी धनैषणा शान्त नहीं होगी। इसलिए इस बात का

ध्यान रखो कि जितना और जो आवश्यक है उतना ही संग्रह करो। संगृहीत धन का उपभोग करो, उपयोग करो। जीवन में धन की यही प्रासंगिकता है।

बन्धुओं, धन का जीवन में वही स्थान है, जो कि नाँव के लिए पानी का। जीवन निर्वाह के लिए धन उतना ही आवश्यक है जितना कि नाँव को चलाने के लिए पानी। पानी के अभाव में नाँव नहीं चल सकती। नाँव तभी चलती है जब नीचे पानी का प्रवाह हो। बिल्कुल सही है। लेकिन यह ध्यान रखना, नाँव पानी में चलती है, पानी के ऊपर रहती है। कहीं ऐसा न हो जाये कि नाँव के अन्दर पानी चला जाय। यदि पानी नाँव में चला गया तो उसे डूबने से कोई नहीं बचा सकता। इसी प्रकार धन का साधन के रूप में जीवनभर उपयोग करो। साध्य नहीं बनने देना। यदि धन को साध्य बना डाला तो जीवन की नौका में पानी भर जायेगा, और वह अवश्य डूब जायेगी। अब स्वयं निर्णय करें कि आप नाँव को चला रहे हैं या डूबो रहे हैं।

नम्बर वन बनने की चाह

इसलिए जितना आवश्यक है उतना संग्रह करो, उसके प्रति आसक्ति न रखो। भगवान महावीर की देशना का यही सार है। वे कहते हैं - तुम कितना भी जोड़ लो, जोड़ने से उसका कभी अन्त नहीं है। बिल्ट्रेड जैसे व्यक्ति को भी शान्ति नहीं है। यद्यपि वह विश्व में नम्बर वन पर है। किन्तु उसे हमेशा यह चिन्ता रहती है कि मेरे से आगे कोई न निकल जाये। वह जानता है कि जो दौलत मैंने जोड़ी है, वह मेरे काम की नहीं। कितना भी करेगा, खायेगा तो दो रोटी ही। सोना-चाँदी जोड़ लें, लेकिन सोने की रोटी थोड़े ही चबायेगा। रोटी तो अनाज की ही खाई जाती है।

कदाचित् वित्त की पूर्ति हो भी जाय, तो लोकैषणा की चाह रहती है, कि दुनियाभर में नम्बर वन बना रहूँ। एक चाह दूसरी चाह को जन्म देती है। उसका अन्त कभी नहीं आता। ऐसे व्यक्ति सब कुछ होने के बाद भी बेचैन होते हैं। उनका दिन का चैन और रात की नींद हराम हो जाती है। अगर उनको थोड़ी सी खबर मिल जाए कि कोई कम्पनी आगे बढ़ गई है, तो उनका जीना मुश्किल हो जाता है। वे हमें सुखी जैसे दिखाई देते हैं, लेकिन वे सुखी हैं नहीं। वस्तुतः वह मनुष्य उतना ही अधिक दुःखी हैं, जिसके मन में जितनी अधिक तृष्णा है।

मन की तरंग मार ले बस हो गया भजन

बन्धुओं, हम अमीर उसे मानते हैं, जिसके पास दौलत है और गरीब उसे जिसके पास कुछ नहीं। परन्तु संत कहते हैं - यह व्याख्या गलत है। अमीर वह नहीं जिसके पास दौलत है। अरे अमीर तो वह है जिसके पास अपार शान्ति है। समृद्धि अमीरी की पहचान नहीं। समृद्धि सम्पन्नता का आधार हो सकती है, पर संतुष्टि की नहीं। अमीरी का असली रूप तो संतुष्टि में है। सही शाहंशाह वह है जो अपने आप संतुष्ट है।

चाह गई चिंता मिटी, मनुवा बे-परवाह।

जिनको कुछ नहीं चाहिए वे शाहं के शाह ॥

सब कुछ होने के बाद भी वह आदमी एकदम गरीब है, जिसके मन में तृष्णा पल रही है। और साधनहीन होने के बाद भी वह व्यक्ति चक्रवर्तियों से बड़ा है, जिसके मन में कोई चाह नहीं। इसी रहस्य के कारण से चक्रवर्ती जैसे वैभवशाली लोग अकिंचन संतों के चरणों में अपना माथा रगड़ा करते हैं। और उनसे प्रेरणा पाते हैं।

शास्त्रकार कहते हैं - को दरिद्र: ? दरिद्र कौन है ? यस्य तृष्णा विशाला। जिसके पास जितनी अधिक तृष्णा है, वह उतना अधिक दरिद्र है। मैं आपसे कहता हूँ - भूखा वह नहीं जिसको खाने की इच्छा नहीं और जिसके पास भोजन नहीं। भूखा तो वह है जिसने दो लड्डू खा लिये, दो थाली में हैं और इसके बाद भी उसकी नजर बगल वाले की थाली पर है।

गरीब वह नहीं जिसके पास अभाव है। गरीब वह है जिसके मन में बहुत कुछ पाने की चाह है। संत कहते हैं -

**‘रहते हो झोपड़ी में मगर महलों की चाह
यह चाह ही तेरे लिए काँटों की राह है।
इस चाह को तू मार दे बस हो गया भजन।
आदत बुरी सुधार ले बस हो गया भजन ॥
मन की तरंग मार ले बस हो गया भजन ...**

सिकन्दर जब गया दुनिया से दोनों हाँथ खाली थे

बड़ी गहरी प्रेरणा है। हम जहाँ हैं, जिस स्थिति में हैं, उसमें हमें संतोष नहीं और मन में पलने वाले असंतोष का कोई उपचार नहीं। यह तभी संभव होगा, जब हम अपने जीवन के मूलतत्त्व पहचानेंगे और जीवन को तदनु रूप ढालने की कोशिश करेंगे। हम जितना-जितना पाते जायेंगे, हमारा मन उतना-उतना अशान्त होता जाता है।

मैं आपसे कह रहा था धनैषणा बहुत बुरी चीज है। पैसे की चाह जब मनुष्य के मन में छाती है तो वह पागल हो जाता है। उसके जीवन का एक ही मकसद होता है जैसे-तैसे कैसे बस पैसा। केवल पैसा ही एक लक्ष्य बन जाता है। वह व्यक्ति हर चीज को पैसे के नजरिये से देखता है। जीवन के शुरूआती दौर में कोई भी व्यक्ति आगे बढ़ता है, पढ़-लिखकर जब वह व्यवहारिक जगत में आता है, तब उससे पूछा जाये तो वह कहता है कि मेरा मकसद पैसा कमाना है।

अरे भैया, पैसा कमाना जीवन का मकसद नहीं, आनन्द पाना मकसद होना चाहिए। जीवन का रस पाना मकसद होना चाहिए। पैसा कमाओ, पर पैसा ही सब कुछ नहीं। बड़े-बड़े पैसे वाले खूब-खूब पैसा कमाकर इस दुनिया से खाली हाथ चले गए। सिकंदर जैसे दौलतमन्द लोगों को भी, जिसने 27 वर्ष की अल्पायु में विश्व विजेता बनने का श्रेय प्राप्त किया, वह भी इस दुनिया से खाली हाथ गया। तब वह पैसा किस काम का ? इस बात को हम समझें। पैसे की जीवन में वही भूमिका है, जो खेत में फसल की सुरक्षा के लिए लगायी जाने वाली बाढ़ की। बाढ़ के रहते खेत की सुरक्षा है। कहीं ऐसा न हो कि हमारी बाढ़ ही खेत खाने लग जाये ! यदि बाढ़ ही खेत बन जाये तो उसे क्या कहा जाय ?

पानी बाढ़ो नाव में घर में बाढ़ो दाम

बाढ़ तो बहुत सुन्दर लगा दी, लेकिन खेत की फसल का ध्यान रखा कि नहीं। खेत में फसल ही नहीं बोये तो यह पागलपन है। और बाढ़ को फैला-फैलाकर पूरे खेत में भर दिया तो भी पागलपन है।

आज यही स्थिति है। कुछ लोग अपने जीवन निर्वाह के साधन के चक्कर में इस तरह उलझ गये हैं कि अपने जीवन का ही ख्याल उन्हें नहीं रहा। कुछ लोग वे हैं, जिनके लिए धन ही जीवन का मूल साध्य बन गया है। ये दोनों ही जीवन की बड़ी चूक हैं। आज की इस आपाधापी और मारामारी की जिंदगी में ये ही बातें देखने मिलती हैं। आदमी केवल पैसे का दीवाना है। एक संस्कृत के कवि ने बहुत अच्छी बात लिखी है, कि आदमी केवल धन-धन की चिन्ता करता है तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। कवि कहता है -

**दुदुभिस्तु नितरामचेतना तन्मुखादपि धनं धनं धनं ।
इत्थमेव निनदा प्रवर्तते किं पुनः यदि नरौ सचेतना ॥**

जब अचेतन नगाड़ा भी बार-बार धन-धन की रट लगाता है तो फिर सचेतन इंसान भी यदि रातदिन धन-धन रटता है तो इसमें आश्चर्य की बात क्या है ? वस्तुतः धनलिप्सु व्यक्ति की मानसिकता पर यह करारा व्यंग है।

संत कहते हैं - पैसा कमाओ। कितना चाहिए, यह भी तो देखो, और जो कमाया है उसका उपयोग करो। धन को नदी के समान प्रवाहित होना चाहिए। जैसे नदी प्रवाहित होकर सागर में समा जाती है। बीच में कदाचित् बाँध भी बनाये जाते हैं। इसी तरह पैसा का संग्रह भी बाँध की तरह है। बाँध कभी-कभी उपयोगी होते हैं। अगर हम बाँध बनाकर पानी को रोके नहीं तो उसका सारा पानी सागर में व्यर्थ हो जाएगा। इसलिए बाँध बनाकर रोकते हैं। बाँध बनाकर पानी को रोकने का मतलब पानी को रोक रखना नहीं। अपितु पानी को वहाँ प्रवाहित करना जहाँ उसकी आवश्यकता है। नदी को बाँधकर नहर-नालों के माध्यम से ठीक जगह प्रवाहित करते हैं, तो वही नदी का जल रेगिस्तान में भी हरियाली पैदा कर देता है।

संत कहते हैं - धन का संग्रह बुरा नहीं, उसे संग्रहित बनाये रखना बुरा है। यदि तुम धन का संग्रह करते हो तो उसका उपयोग करो। जहाँ उसकी आवश्यकता है, दीन-दुखियों की सेवा में अपने धन का उपयोग करो। पीड़ित मानवता की सहायता या कल्याण में अपने धन का उपयोग करो। धर्म, संस्कृति और समाज के उत्थान में अपने धन का उपयोग करो। राष्ट्र के विकास में अपने धन का उपयोग

करो। इस तरह धन का संग्रह करना सार्थक है। लेकिन यदि केवल उसे संग्रहित करके रखे रहोगे तो महाविनाश का कारण होगा। जैसे हम बाँध बनाकर पानी को स्थायी रूप से रोक लें तो वह बाँध कभी भी टूट सकता है। एक बार बाँध के टूटने से तो विप्लव ही आता है, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं होता। पर यह ध्यान रखना, पैसे को रोकने से महाविनाश ही होता है।

दोनों हाँथ उलीचिये यही सयानो काम

पैसे को कितनी वरीयता दें ? पैसा जीवन में उपयोगी है आज के युग में। आप कहेंगे - महाराज, आपको क्या पता पैसे की कीमत क्या है ? आज तो आदमी के जेब में पैसा है तो सब कुछ पा सकता है।

सर्वे गुणाः कञ्चनमाश्रियन्ते ।

बन्धुओ, यह अधूरा सोच है। वर्णी जी के जीवन का एक प्रसंग याद आ रहा है। वर्णी जी के साथ एक सेठ भी थे। दोनों चले जा रहे थे। रास्ते में एक नदी पड़ी। नाँव से उस पार जाना था। समस्या, आगे क्या करें ? सेठ ने नाविक को बुलाया। नाविक ने कहा - इस पार से उस पार जाने का एक रूपया लेंगे। ठीक एक रूपया दे दिया गया। एक रूपया दिया तो सेठ को थोड़ा अहं आ गया। वह वर्णी जी से कहता है - देखो, आप कहते हैं कि पैसे का कोई महत्त्व नहीं है। धन कोई काम में नहीं आता है। अगर आज रूपये नहीं होते तो उस पार कैसे आते। मेरे पास पैसे थे, काम में आये।

वर्णी जी वर्णी जी थे। उन्होंने कहा - सुनो, पैसे तुम जेब में रखे रहते तो इस पार नहीं आते। इस पार हम तभी आये हैं, जब तुमने पैसे का त्याग किया है। पैसे को पास में रखने से इस पार नहीं आये। हमारा भी कल्याण धन के संग्रह में नहीं है। कल्याण तो धन के सदुपयोग में है।

हालाँकि आज के सारे सामाजिक मूल्य अर्थप्रधान होते जा रहे हैं। **अर्थ है तो कुछ अर्थ है, अन्यथा सब कुछ व्यर्थ है।** ऐसी धारणा दिनोंदिन बलवती होती जा रही है। पर बन्धुओं, यह एकांगी दृष्टिकोण है। अर्थ के बल पर आदमी प्रतिष्ठा तभी पाता है जब वह अर्थ का त्याग कर देता है। इसलिए इस बात को हम

समझें। धन को उतनी ही प्रमुखता दें, जितनी की आवश्यक है। धन की चाह बुरी नहीं है, लेकिन धनैषणा के पीछे धनान्ध हो जाना बुरा है। आज के लोगों की जो भागमभाग है वह बड़ी विचित्र है। एक कवि लोगों की भागमभाग पर अपना चिन्तन प्रस्तुत करते हुए बड़ा ही करारा व्यंग प्रस्तुत करता है।

जितना जोड़ा, उतना खोया, रहे शून्य के शून्य

बम्बईया जीवनसंस्कृति पर उसने कहा है कि बम्बई के लोगों की जिंदगी बड़ी फास्ट है। अब लोग सुबह घर से निकलते हैं। 150, 200 किलोमीटर चलना पड़ता है। रात को 10-11 बजे लौटकर आते हैं। सुबह से गये। न अपने बच्चों से बातचीत, न पत्नि से प्रेम। दिनभर की दिनचर्या यही है। सुबह उठे। एक दो लोटा पानी अपने सिर पर डाला। जल्दी-जल्दी में कपड़े पहने और नाश्ते के लिए बैठे। दो-चार कौर मुँह में डाले कि तभी फोन आ गया। अभी आता हूँ। जल्दी फटाफट कर, फाइलें उठाईं। दस बीस आफिस में खुद गये या फोन पर सम्पर्क किया और पूरा दिन बिता दिया। रात में पुनः घर लौट आये एकदम थके-मांदे। 10 बजे घर आने पर जो ठण्डा खाना रखा हुआ है, उसे ही खाकर सो रहे। परिवार से न कोई बातचीत, न दुःखदर्द का बँटवारा। न माँ-बाप की सेवा। यह है आज के लोगों की जिंदगी केवल भागदौड़, भागमभाग, मारामारी। इसके अलावा क्या है।

कवि ने ऐसी जिंदगी पर व्यंग किया है कि बम्बई के लोगों से यदि पूछा जाय कि आपके बच्चे कितने बड़े हैं? इतने बड़े हैं (हाथ का इशारा करते हुए)। इतने बड़े क्यों हैं भाई? इतने बड़े इसलिए बताते हैं कि जब मैं घर से निकलता हूँ तो बच्चे विस्तर में रहते हैं और जब घर आता हूँ तो भी वे बिस्तर में रहते हैं। अर्थात् वे हमेशा अपने बच्चों को पड़ा देखते हैं। खड़ा देखा ही नहीं तो कैसे बताये कि बच्चे इतने बड़े हैं।

देखिए, आप भी अपने कारोबार में इस कदर उलझ गये हैं कि घर-व्यवहार के लिए बिल्कुल समय नहीं बचा पा रहे हैं। ऐसे कारोबारी की व्यस्तता का क्या मतलब? इतनी भागमभाग का क्या मतलब? अगर पैसा कमाकर करके आप अपने परिवार का सुख नहीं पा सके। उससे तो अच्छा वह मजदूर है जो आठ घंटे

की मेहनत करके अपने परिवार के साथ अपना जीवन जीता है। ध्यान रखना कोई कितना बड़ा हो या कितना ही छोटा हो तो भी सबको राख में ही बदलना है। फिर यह जोड़-घटाना, गुणा-भाग किस लिए? गुरु जी ने क्लास में पूछा - जीरो में से जीरो माइनस करने पर कितना होता है? कहा - जीरो। 100 में से 100 माइनस होने पर क्या होता है? शून्य। 1000 में से 1000 माइनस होने पर? शून्य। लाख में से लाख माइनस होने पर क्या होता है? शून्य। करोड़ में से करोड़ माइनस होने पर क्या होता है? शून्य।

एक छात्र ने पूछा - सर, छोटी राशि से माइनस करने पर जो शून्य आयेगा वह छोटा होगा और बड़ी राशि में से माइनस करने पर जो शून्य होगा वह बड़ा होगा क्या?

गुरु जी ने कहा - अरे, शून्य तो शून्य है। चाहे वह छोटी राशि के घटाने से आये या बड़ी राशि के घटाने से।

बात मैं आपसे यही कह रहा हूँ कि जीवन का अन्त तो सबका शून्य है। चाहे वह जीरो माइनस जीरो हो या करोड़ माइनस करोड़। इस हकीकत को समझिये और जीवन के इस भागमभाग से अपने आपको बचाने का प्रयास कीजिए। जीवन का रस लीजिए।

प्राथमिकता आप यदि चेंज कर दो, तो सब काम हो सकता है। हर व्यक्ति के लिये दिन तो चौबीस घण्टे का ही होगा। पन्चीस घण्टे का तो नहीं है। केवल प्राइरिटी बदलने की देर है। लेकिन क्या करें? जिन्हें सबसे अधिक महत्त्व देना चाहिए उसे सबसे आखिरी पायदान में रखते हैं। जिन्हें निचले पायदान में रखना चाहिए उन्हें हम सिर पर बैठाकर रखते हैं। बहुत अन्तर है। यहाँ हमारी सोच बदलनी चाहिए। जब तक हमारा कॉन्सेप्ट नहीं बदल जाता है, तब तक हम अपने जीवन का सुख नहीं पा सकते।

बेटे ने पिता से कहा - पापा! आप एक घण्टे में कितना कमा लेते हैं?

क्यों?

बस यूँ ही पूछा।

समझ लो पाँच हजार।

आप दो हजार रूपये मुझे देंगे ?

क्यों ?

दीजिए तो ! पिता ने दो हजार रूपये अपनी जेब से निकाल कर बेटे को दे दिये। बेटा गया और अपनी गुल्लक को खोला। उसमें तीन हजार रूपये थे। तीन हजार में दो हजार ये मिलाये, पूरे पाँच हजार रूपये हो गये। और पापा को पाँच हजार रूपये थमाते हुए कहा - ये पाँच हजार रूपये हैं, आप मुझे एक घण्टा दीजिए। बहुत गहारा संदेश छिपा है इसमें।

आज की वास्तविकता है यह। आज के आदमी के पास पैसा कमाने के लिए पूरा समय है, लेकिन अपने बच्चों को प्यार से पुचकारने के लिये समय नहीं है। फिर लोग कहते हैं कि मेरे बच्चे मेरा कहना नहीं मानते। तो कैसे कहना मानें ?

बन्धुओं, परिवार को समय दीजिए। यह बहुत जरूरत है आज की। आज की जो पीढ़ियाँ संस्कारहीन होती जा रही है, उसके पीछे यह भी एक प्रबल कारण है। घर में जो संवादहीनता बढ़ रही है, उसके पीछे भी एक सबल कारण है। जीवन में जो स्नेह और संवेदना की कमी आ रही है, उसके पीछे भी एक प्रबल कारण है। क्योंकि हमने सबसे ज्यादा प्रमुखता पैसे को दे दी। इसलिए हम घर के सदस्यों को भी देखते हैं तो पैसे के नजरिये से देखते हैं। जबकि हमें उसे भावना और कर्तव्य के नजरिये से देखना चाहिए। सम्बन्धों की प्रगाढ़ता जहाँ नहीं रहेगी, वहाँ जीवन का रस नहीं रहेगा।

भगवान महावीर ने इसलिये हमें अपनी इच्छा और आकांक्षाओं पर नियन्त्रण करने की प्रेरणा दी है और कहा कि सावधान होकर चलो, यह तो अन्तहीन दौड़ है। जिससे तुम्हारे जीवन का आन्तरिक सामंजस्य नष्ट होता हो, जो जीवन की मधुरता को नष्ट कर दे, जो तुम्हारे सम्बन्धों की प्रगाढ़ता को लील ले, वह पैसा किसी काम का नहीं है। वह पैसा तुम्हारे लिये सिरदर्द है। पैसा कमाकर तुम छोड़ जाओगे।

आजकल लोग सोचते हैं कि पैसा हम इसलिये कमाते हैं कि बच्चों को काम आये। भैया, बच्चों के लिये तुम्हारे द्वारा जोड़ा गया पैसा काम में नहीं आयेगा। बच्चे तुम्हारे तभी होंगे, जब बच्चों को पैसे की जगह प्यार दोगे। आप बच्चों को प्यार नहीं दे रहे हैं। पैसे देकर लाट खरीदा है।

समय दीजिए, स्नेह दीजिए तब बच्चें आपके अपने होंगे। जो व्यक्ति शुरू से बच्चों के लिये समय देते हैं और परिवार में परिवार की तरह रहते हैं, सबमें घुल-मिलकर रहते हैं, उनको अपने बच्चों के लिए विशेष हिदायत देने की जरूरत नहीं होती। उनके बच्चे सदैव अपने हो जाते हैं। मैं कई ऐसे बच्चों से मिला हूँ।

एक बार ऐसा हुआ, एक वकील साहब थे। उनकी बेटी अजैन लड़के से शादी करने को उतारू हो गयी। आजकल यह बहुत तेजी से चलन बढ़ रहा है, विधर्व विवाह का, जो समाज के बहुत हानिकारक है। यह हर समाज के लिये हानिकारक है। क्योंकि इसके परिणाम अच्छे नहीं आते।

वकील साहब नहीं चाहते थे कि बेटी यह सम्बन्ध करे। वे बेटी को लेकर मेरे पास आये। महाराज जी इसको समझाइये। मैंने बेटी से पूछा। उसके माँ-पिता अपना रोना रो रहे थे। बेटी ने जो बात कही वह बहुत सोचने लायक है। बेटी कहती है - ये लोग कहते हैं कि मैंने तुम्हारे लिये यह किया, वह किया, रूपये-पैसे का अम्बर तो घर में लगा लिया, पर पूछिये मेरे पिताजी ने मेरे लिये समय कितना दिया ? मेरे लिये प्यार कितना दिया ? इनका सारा समय तो अपनी फाइलों और क्लाइंटों तक सीमित रहता है, हमारे लिये कुछ समय ही नहीं दिया। मैं प्यार चाहती थी, मुझे घर में प्यार नहीं मिला। मुझे जिससे प्यार मिला, मैं उस क्षेत्र में आगे इतनी बढ़ गयी कि अब लौट पाना नामुमकिन है।

बन्धुओं यह समाज की दुर्व्यवस्था का एक छोटा-सा चित्र है। मैं पूरी तरह से उस लड़की को निर्दोष और निरपराध तो नहीं मानता, पर मैं उसके माँ-बाप को दोषी जरूर मानता हूँ।

अपने बच्चों के लिए इतना प्यार दीजिए कि उन्हें किसी से प्यार की भूख ही न रहे। जब ऐसा होगा तो वे इधर-उधर भटक नहीं सकते। यह एक कमी हो रही

है। हम अपने जीवन को बहुत बुरी तरह उलझा रहे हैं। ऐसी उलझनपूर्ण स्थिति का कोई समाधान नहीं होगा।

अभी कुछ लोगों ने एक पोस्टर मन्दिरों में लगाया है। उसका विषय हर समाज के लिये चिन्तनीय है। उस पर बहुत गंभीरता से विचार करना चाहिए कि इस समस्या का निदान कैसे हो? जब बात बढ़ जाती है, तब हम विवश हो जाते हैं, माँ-बाप विवश हो जाते हैं। मैं तो यह कहना चाहता हूँ कि माँ-बाप अपने बच्चों को इस तरह अपने प्रेम के बँधन में बाँधकर रखें कि उनके बच्चे उनकी हिदायतों की उपेक्षा ही न करें। यदि आपके बच्चे आपकी हिदायतों की उपेक्षा करते हैं तो मैं इसमें आपकी कमी मानता हूँ। आप यदि ठीक ढंग से संस्कारित करेंगे, जड़ से, प्रारम्भ से तो मैं नहीं समझता कि कोई संतान अपने माता-पिता की अवज्ञा करने का दुःसाहस कर सकेगी। उसकी तरफ अपना ध्यान दीजिए।

धनैषणा अर्थहीन है। हम चाहे कितना ही कमा लें, उनका अन्त नहीं। लेकिन कुछ लोग होते हैं कि उसके पीछे पागल होते हैं। पहले आदमी धन चाहता है, फिर सन्तान चाहता है, फिर ख्याति चाहता है। यह चाह बढ़ती जाती है। एक के बाद एक, एक के बाद एक।

एक बार ऐसा हुआ, मनुष्य की चतुराई देखिए आप। एक आदमी बड़ा दरिद्र था, सन्तानहीन था और अन्धा भी था। उसने एक देवता की आराधना की। देवता प्रसन्न हो गये। देवता ने कहा - मैं तुम्हारी आराधना से प्रसन्न हूँ। कोई एक वर माँग लो मैं पूरा कर दूँगा।

एक वर माँगने को कहा है क्या माँगू? तुरन्त दिमाग दौड़ाया, कहा - प्रभो! यदि वर देना ही चाहते हो तो इतना ही दे दो, कि मैं अपने नाती को सोने की कटोरी में दूध-भात खाता हुआ देखूँ।

आदमी की खोपड़ी है, बड़ी विचित्र है। उसने एक साथ तीनों चीजें माँग लीं। यह मनुष्य का माँग भरा चित्त है। हमेशा इन्हीं के पीछे वह लगा रहता है। संत कहते हैं - इनसे तुम जितना माँगोगे उतनी बेचैनी पाओगे। इसलिये कहीं एक जगह ठहरने को कोशिश तुम्हारी बनी रहनी चाहिए। इस भागमभाग में जितना ही पाओ,

उतनी ही चाह बढ़ती जाती है। **द मोर गेट द मोर डिमाण्ड** वाली बात है। जितना होना, उतना रोना।

एक बार आचार्यश्री ने बहुत अच्छी बात कही थी। उन्होंने कहा - मनुष्य जो चाहता है, सो पाता नहीं, जो पाता है सो भाता नहीं, जो भाता सो चाहता नहीं। इसीलिए सुख-साता नहीं।

अपनी दृष्टि को मोड़िये। चाहे वह वितैषणा हो, चाहे धनैषणा हो या पुत्रैषणा हो या लोकेषणा हो, इनका कभी कोई अन्त नहीं। दुनियाँ में जो नम्बर एक रहे हैं, अभी ऊपर से नम्बर एक थे, उनको नीचे से नम्बर एक होने में देर नहीं लगती। ये तो पुण्य-पाप के संयोग हैं, जब तक अनुकूल हैं, सब कुछ अनुकूल हैं। जैसे ही कर्म का उदय होता है, भीतर का समीकरण बिगड़ता है, तो बाहर का समीकरण आपसे आप बदल जाता है। इस बात को समझें, और अपनी आकांक्षाओं को सीमित करने का प्रयत्न करें। हमारी जितनी चाह घटेगी, जीवन की राह उतनी ही प्रशस्त होगी। चाह जितनी बढ़ेगी, जीवन में दाह उतनी बढ़ेगी। आखिर हम चाहते जाते हैं और हमारी स्थिति हास्यास्पद हो जाती है।

एक आदमी अमेरिका गया। जैसे-तैसे पैसों की जुगाड़ करके अमेरिका गया। पैसे की तंगी तो थी ही, वहाँ मँहगाई भी अधिक है। सोचा इण्डियन मार्केट में चला जाय। वह एक होटल में गया। उसे खाने-पीने की इच्छा तो थी ही। वहाँ जाने पर उसे दो केबिन मिले। एक में लिखा था शाकाहार और दूसरे में लिखा था मांसाहार। उसने सोचा मांसाहार वैसे ही मँहगा होता है और अपन तो शाकाहारी है ही, इसलिये वह शाकाहारी केबिन में घुस गया। शाकाहार के केबिन में घुसा तो उसे फिर दो केबिन मिले। एक में लिखा था देसी घी और दूसरे में लिखा था डालडा। उसने कहा - देसी तो मँहगा होगा ही इसलिये वह डालडा में घुस गया। डालडा में घुसा तो अन्दर फिर दो केबिन मिले। एक पर लिखा था ताजा और दूसरे में लिखा था बासा। उसने सोचा ताजा तो मँहगा होगा और बासे से भी अपना काम चल जायेगा अतः वह बाँसे वाले केबिन में घुस गया। अन्दर गया तो फिर दो गेट मिले एक में लिखा था नकद और दूसरे में लिखा था उधार। यह देखकर उसकी

बाँछें खिल गयीं, कि परदेश में उधार मिले, इससे अच्छी और क्या बात हो सकती है। यह सोचकर वह उधार वाले केबिन में घुसा जैसे ही घुसा कि देखता है कि वह पुनः सड़क पर आ गया है।

बस यह है हमारे मन की चाहों की पूर्ति का अंजाम। हम चाहते हैं कि सब हमारे अनुकूल होते जायें। लेकिन आगे बढ़ते-बढ़ते हम खुद कब सड़क पर आ जाते हैं हमें पता नहीं चलता। बहुत छोटी-छोटी बातें हैं, लेकिन इनका संदेश गहरा है। आवश्यकता है इन पर अमल करने की। जीवन व्यवहार के लिये यह बहुत ज्यादा जरूरी है। हम सब कुछ करें, पर जीवन के मूल स्वरूप को पहचान कर चलें। यदि उसमें हम सफल होते हैं तो हमसे ज्यादा सुखी कोई नहीं। और यदि हम विफल हो जाते हैं तो हमसे बड़ा इस संसार में कोई दुःखी नहीं हो सकता।

वस्तुतः हमारे सारे सुख-दुःख हमारी सोच, हमारी चिन्तनधारा और जीवन शैली पर निर्भर करते हैं। आप किसे वरीयता देते हैं। किसे प्राथमिकता और प्रमुखता देते हैं? उसके ऊपर निर्भर करता है। आपकी सोच जब पैसे से बँधी होगी तो आप हर सम्बन्ध को पैसे के चश्मे से देखेंगे। और यदि आपकी सोच जीवन से जुड़ी होगी तो हर बात को जीवन से तौलकर देखेंगे। आप देखिए, आप किसको महत्त्व देते हैं? जीवन को या पैसे को। पैसा तो चाहे कितना ही जोड़ लो, आखिर एक दिन सबको यहाँ से छोड़कर जाना ही है। बड़े-बड़े दौलतमंद भी यहाँ से कुछ लेकर नहीं गये। तब हम और आप जैसे साधारण जैसे व्यक्ति की बात ही क्या है? सब कुछ यहाँ से जाना है, तो हम समझें, जितने दिन रहना है, अच्छे से रहें, अच्छे से जियें। जीवन की लालसा को नियन्त्रित करके अपने जीवन को आगे बढ़ायें।

मुझे याद आ रहा है टॉलस्टाय द्वारा लिखा हुआ एक बहुत अच्छा प्रसंग। उसने एक कहानी लिखी **कितनी जमीन**। जैनेन्द्रकुमार जैन ने उसका अनुवाद किया। वह बहुत उपयोगी है।

एक भोलाभाला किसान था। उसके यहाँ किसी फकीर का आगमन हुआ। किसान ने उनका आत्मीय स्वागत किया। भोजन कराया। फकीर उसकी सेवा से प्रसन्न हो उठा। फकीर ने पूछा - क्या करते हो? कुछ नहीं, ढाई बीघा जमीन है,

जोतता हूँ, अपने और अपने परिवार का पालन करता हूँ। और आप जैसे संतों की चरण रज रख अपने जीवन को धन्य कर लेता हूँ। फकीर ने कहा - बस, तुम्हारे पास केवल ढाई बीघा जमीन है? हाँ, ढाई बीघा जमीन है। उसने कहा - तुम बड़े गरीब हो! उसने कहा - यह गरीब क्या होता है? बोले - जिसके पास कम जमीन होती है, वह गरीब होता है। जिसके पास बहुत ज्यादा जमीन होती है वह अमीर होता है। बोला - अच्छा, लोग ज्यादा जमीनों वाले भी हैं? हाँ। उनको अमीर कहते क्या? हाँ। इतना सुना और सोचा। तब से वह आदमी गरीब बन गया। क्योंकि उसके अमीर बनने की चाह जग गयी। उसके चहरे पर निराशा छा गयी। तब संत ने पूछा - बच्चे, तूने मेरी सेवा की है, मैं सेवा को निरर्थक नहीं जाने दूँगा। मैं तुझे एक मन्त्र बताता हूँ, दो दिन के उपवास से इसकी आराधना करना। उससे देवता प्रसन्न होंगे और उसके बाद तू जितनी चाहेगा, उतनी जमीन का मालिक हो जायेगा।

उसने खुशी-खुशी मन्त्र लिया। मन्त्र की आराधना की विधि पूछी और उसमें जुट गया। उसकी आराधना से देवता प्रसन्न हो गये। देवता ने कहा - दूर-दूर तक जितनी जमीन दिखाई पड़ रही है, यह मेरी है। एक काम करना, सुबह सूरज निकलने पर तुम चलना शुरू करना और सूरज के डूबने तक तुम जितनी जगह घेर लो, उतनी जमीन मैं तुम्हारे नाम कर दूँगा। अन्धा क्या चाहे? दो आँखें। उसने तो इतनी बड़ी कल्पना ही नहीं की थी। खुशी के कारण रातभर सो न सका। सपनें में भी दौड़ता रहा। सुबह हुआ तो कुछ खाया-पिया नहीं। क्योंकि यदि कुछ खा लेंगे तो दौड़ने में दिक्कत होगी। पानी का एक बॉटल जरूर कंधे पर टाँग लिया। और तीर की तरह भागा। दौड़ना शुरू किया बगैर रुके। एक पल भी रुके बिना। कुछ देर बाद देखा कि अभी मात्र एक घण्टा ही हुआ है और कितनी अधिक दूरी पर आ गया हूँ। अभी तो सूरज ठीक ढंग से चढ़ा भी नहीं है। उसने सोचा - थोड़ा और दौड़ा जाय, जब दिन ढलने को होगा तो तेजी से लौट आऊँगा। उसने जो दौड़ना शुरू किया तो एक पल भी नहीं रुका। पानी भी नहीं पिया। कारण पानी पीने में जितनी देर होती उतनी देर में तो कई डग जमीन नाप सकता था। वह दौड़ता गया। दौड़ते-दौड़ते काफी आगे निकल गया और अचानक उसका ध्यान ऊपर आसमान की

ओर गया तो देखा कि सूरज तो अब अस्ताचल की ओर है। वह काफी आगे आ निकला था। उसके पैर जवाब दे रहे थे। उसे लौटना था, लेकिन वह कुछ कर नहीं पा रहा था। जैसे-तैसे अपनी शक्ति बटोरकर लड़खड़ाते कदमों से गिरते-पड़ते उसने लौटना शुरू किया। दौड़ते-दौड़ते अपने लक्ष्य तक आने के पहले ही एक पत्थर की ठोकर खाने से गिर पड़ा और जो गिरा तो कभी उठ नहीं सकता।

कहते हैं वह देवता वहाँ आया। उस देवता ने उसकी वहाँ कब्र बना दी। कब्र पर एक शिलालेख अंकित किया जो आज भी अपना संदेश हम सबको दे रहा है। उस पर लिखा - **बस इतनी सी जमीन की खातिर यह आदमी सारी जिंदगी दौड़ता रहा।** बहुत गहरा संदेश छिपा है।

**कुछ भी नहीं है तेरा, दो गज जमीन है तेरी।
मिल जायेगी ये तुझको ये भी नहीं जरूरी ॥**

हिन्दू परम्परा में दफनाया नहीं जाता, जलाया जाता है। उसी दो गज जमीन में न जाने कितनों को जला दिया गया होगा। वह भी हमें नसीब नहीं है। लेकिन हर आदमी आज भी दौड़ रहा है, केवल दौड़ रहा है। पहुँच कहीं नहीं पा रहा है।

**जन्म से लेकर मरण तक दौड़ता है आदमी
दौड़ते ही दौड़ते दम तोड़ता आदमी।
औंठ ठंडे आँख गीले और दिल में आँधियाँ
एक ही संग तीन मौसम ओढ़ता है आदमी ॥**

जन्म से लेकर मरण तक दौड़ता है आदमी।

**सुबह पलना शाम अर्धी और खटिया दोपहर
तीन लकड़ी चार दिन में तोड़ता है आदमी।**

**जन्म से लेकर मरण तक दौड़ता है आदमी।
एक रोटी दो लंगोटी तीन गज कच्ची जमीं
तीन चीजें चार दिन में जोड़ता है आदमी।**

जन्म से लेकर मरण तक दौड़ता है आदमी।

**है यहाँ विश्वास कितना आदमी का मौत पर
मौत के हाथों सभी कुछ छोड़ता है आदमी
जन्म से लेकर मरण तक दौड़ता है आदमी।**

बन्धुओं, हम जीवन की वास्तविकता को समझें और उसी अनुरूप अपने जीवन को ढालने का पुरुषार्थ करें। तभी हम अपने जीवन का सच्चा लाभ उठा सकेंगे। हम सबके जीवन में ऐसी पात्रता प्रकट हो, और हम अपने जीवन को कल्याणोन्मुखी बनाये इसी शुभ भावना के साथ मैं अपनी वाणी को यही विराम दे रहा हूँ।

रात्रि के सघन अन्धकार के बीतने पर प्रभात में सूर्य मुस्कराता है। जब धरती तपती है, फटती है तो प्रकृति पिघलती है, आसमान से मेघ बरसते हैं। इसी तरह धरती पर जब-जब पाप, अनाचार और अराजकता की चरम सीमा होती है, तब-तब कोई न कोई ऐसे युगपुरुष जन्म लेते हैं जो इस धरती पर जन्म लेकर धरती माता के आँसू पौँछते हैं और सारी दुनिया को मानवता का पाठ पढ़ाते हैं। धर्म का मार्ग सिखाते हैं।

आज भगवान महावीर का अवतरण हुआ। उनका जन्म हुआ। यह जन्म भगवान महावीर का अपने लिये नहीं, संसार के उद्धार के लिये हुआ। जन्म तो हमारा भी होता है, सबका होता है। यदि जन्म लेने की प्रक्रिया को देखें तो सब सामान्य है। लेकिन महावीर जैसे युगपुरुष कोई बिरले ही जन्मते हैं। वे जो साधना के शिखर पर पहुँचते हैं, त्याग और तपस्या के बल पर अपनी आत्मा को प्रखर और प्रतप्त बनाते हैं, उनकी ही चेतना में महावीरत्व जैसी हैसियत प्रकट होती है। वे ही जनता का त्राण कर सकते हैं, जगत की पीड़ा को शान्त करने में समर्थ हो सकते हैं। यही हमारी भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है कि जब कभी युग-युगान्तरों में ऐसी स्थिति आयी है तो किसी युगपुरुष ने आकर हम सबके जीवन का मार्गदर्शन किया है।

**कोई कंस सताता जग को, कोई कृष्ण बचाते हैं।
जब जब रावण शोर मचाता, राम दौड़कर आते हैं,**

**तब तब लव-कुश पैदा होते, जब जब सीता रोती है,
घोर अधर्मों के पटले पर गीता पैदा होती है ॥**

बन्धुओं, यह एक प्रतीक है, धर्मशास्त्रों में लिखा है -

**आचाराणां विघातेन कुट्टीनां च सम्पदः ।
धर्मं ग्लानिपरिप्राप्तमुच्छ्रयन्त जिनोत्तमः ॥**

जब मनुष्य के आचरण में घोर शैथिल्य आ जाता है, उसकी प्रवृत्ति उच्छृंखल, अराजक और अमानुषिक होने लगती है। जब धरती में जन्म लेने वाला यह धरतीपूत खुद धरती के लिये बोझ बनने लगता है, तब ऐसे कोई युगपुरुष आते हैं जो अपने हस्तावलम्बन से पूरी मानव जाति का उद्धार करते हैं। वे ही कभी राम कहलाते हैं, वे ही कभी महावीर कहलाते हैं, वे ही कभी तीर्थंकर कहलाते हैं, वे ही कभी अवतार कहलाते हैं।

आज सब लोगों का बड़ा सौभाग्य है कि उन परम तीर्थंकर महावीर की जयन्ती मनाने के लिये हम सब एकत्रित हुए हैं, जिन्होंने आज से छब्बीस सौ वर्ष पूर्व इस धरती पर जन्म लेकर विकल धरा के आँसू पौछे। भगवान् महावीर के काल में जो देश की स्थिति थी, वह कितनी विषम थी, यह हर उस व्यक्ति को पता है, जिसने भारतीय इतिहास के पन्नों को पलट कर देखा है। वह स्थिति बड़ी क्रूरता पूर्ण थी। उस समय मनुष्य की स्थिति बहुत दयनीय थी। वर्गस्वार्थियों ने धर्मग्रन्थों के हवाले दे-देकर समाज के एक बहुत बड़े वर्ग को पीस डाला था। धर्म के नाम पर असंख्य पशुओं की एक साथ बलि हो जाती थी। नारी की स्थिति भी अत्यन्त दयनीय थी। समाज के दलित, पीड़ित और पिछड़े वर्ग की स्थिति तो और भी गयी गुजरी थी। वे मनुष्य होकर भी मनुष्यता के अधिकार से वंचित थे। ऐसे समय में जब भगवान् महावीर का जन्म हुआ, उन्होंने जब इस दुनिया को देखा तो मानवता के इस उत्पीड़न से उनका चित्त बेचैन हो उठा। उन्होंने सोचा कि यदि मैं विवाह के बन्धन में बँध जाता हूँ तो यह ठीक नहीं होगा। मुझे किसी एक के बँधन में बँधने की अपेक्षा जग के सारे बँधनों को तोड़कर मुक्त कर देने का उपक्रम करना चाहिए। इसी मनोभाव से प्रेरित होकर भगवान् महावीर दीक्षित हो गये।

चौबीस तीर्थंकरों की परम्परा में हर तीर्थंकर के वैराग्य का कोई-न-कोई निमित्त है। लेकिन अकेले तीर्थंकर महावीर हैं, जिनके वैराग्य का बाहरी कोई निमित्त नहीं बना। केवल सम-सामायिक परिस्थितियों ने उन्हें आगे बढ़ाया।

बन्धुओं, मैं तो यह समझा हूँ कि महापुरुष तभी जन्म लेते हैं, जब परिस्थितियाँ उन्हें पुकारती हैं। **जिस समय भगवान् महावीर ने जन्म लिया, वह समय केवल महावीर जैसे लोगों की उत्पत्ति का ही समय था।** आवश्यकता थी।

बन्धुओं, आज के सन्दर्भ में जब हम विचार करते हैं तो हमें ऐसा लगता है कि आज के युग में भगवान् महावीर और उनके सन्देश ज्यादा प्रासंगिक हैं। क्योंकि उस युग में मनुष्य हिंसक था, क्रूर था, लेकिन उसकी एक सीमा थी। परन्तु आज के मनुष्य की कोई सीमा नहीं है।

हमने विकास किया है, यान्त्रिक युग में हमने यान्त्रिक मनुष्य का निर्माण कर लिया। अब तो मनुष्य खुद अपने आपमें यन्त्र बन गया है। लेकिन इन दिनों में हमने विकास के साथ-साथ विनाश के जितने सामान एकत्रित किये हैं, जितने सामान ईजाद किये हैं, वह इस धरती के लिये समस्या बन गयी है।

बन्धुओं, भगवान् महावीर ने जिस अहिंसा का पाठ हम सबको पढ़ाया आज उस अहिंसा की कितनी ज्यादा आवश्यकता है। हम भारतीय संस्कृति के इतिहास को पलट कर देखते हैं, तो एक समय था जब दो व्यक्ति बिना अस्त्र के लड़े थे, वे थे भरत और बाहुबली। उसके बाद दो सेनायें लड़ी, राम और रावण की। लेकिन वह भी सीमित युद्ध था। उसके बाद एक ही वंश के दो पक्ष लड़े, जिससे कौरव और पाण्डव का महाभारत हुआ। उसके बाद जब हम आगे चलते गये तब विश्व युद्ध के काल में दो व्यक्ति नहीं, दो देश लड़े। ये दो देश नहीं, अपितु दो महाशक्तियाँ, दो खेमे थे। आज की स्थिति तो और अधिक भयावह है।

पहले आदमी के हाथ में लाठी थी, बाद तीर-कमान आये, फिर तमंचे आये, फिर तोप आये, और आज... आज के युग में इन सबकी कोई जरूरत नहीं, एयरकण्डिशन में बैठा व्यक्ति सारे विश्व को तहस-नहस करने में समर्थ है। कहने

को हमने प्रगति की है, लेकिन उस प्रगति के साथ प्रलय की भी व्यवस्था कर ली है। हमने सुना है कि पंचमकाल के आखिरी में प्रलय होगा, वैदिक परम्परा कहती है कि शिव के तीसरे नेत्र के खुलने से धरती पर प्रलय होगा, लेकिन **अब मुझे लगता है कि प्रलय के लिये पंचमकाल तक पहुँचने की जरूरत नहीं, शिव के तीसरे नेत्र के खुलने की प्रतीक्षा करने की भी जरूरत नहीं, क्योंकि प्रलय के लिये मनुष्य ने सारी व्यवस्था कर ली है। जिस दिन एक आदमी के दिमाग में फितूर आ जायेगा और एक बटन चटकायेगा, सारी धरती तहस-नहस हो जायेगी** हमने कितने सारे प्रबन्ध कर रखे हैं। आण्विक युग में हम जी रहे हैं। एटमबम और हाइड्रोजनबम के माध्यम से जो शक्तियाँ हमने अर्जित कीं, आखिर वे हैं क्या ? ये मनुष्य की बुद्धि को विकृत करने वाली चीजें हैं, जो हमारे लिये महाविनाश का कारण बनेगी।

एलबर्ट आइंस्टीन ने जब एटमिक पावर का अनुसंधान किया, तो उनसे किसी ने पूछा - आपने जो यह अनुसंधान किया है, वह मानवता के क्या काम आयेगा ? आइंस्टीन ने बहुत सार्थक जबाव दिया। उसने कहा - मेरे द्वारा किया गया अनुसंधान तब तक मानवता के कल्याण में काम आयेगा, तब तक सृजन के काम आयेगा, जब तक मनुष्य का दिल और दिमाग दुरुस्त है। जैसे ही मनुष्य का दिल और दिमाग बिगड़ेगा, जो ये सृजन के कारण हैं वे ही संहार के कारण बन जायेंगे। आज हम सबको देखने को मिल ही रहा है। आज वह पारम्परिक लड़ाई की बात नहीं है, अब तो केवल आण्विक और रासायनिक युद्ध की तैयारी है, जो केवल बौद्धिक स्तर पर होती है।

बन्धुओं, बाहिरी स्तर पर हिंसा फिर भी कम हो गयी है, लेकिन मनुष्य के बौद्धिक स्तर का जो अपराध है, वह दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है। संत कहते हैं कि बाहर के अपराध से भी खतरनाक अपराध बौद्धिक अपराध होता है, वह भी मनुष्य की खोपड़ी से प्रसृत। उससे बच पाना तभी संभव है, जब मनुष्य के अन्दर अहिंसा के संस्कार आरोपित हों। अहिंसा के प्रति उसके मन में निष्ठा जागे। अहिंसा के प्रति निष्ठा जागृत करने का मतलब क्या है ? भगवान महावीर की अहिंसा का

मूल आधार आत्मसाम्य की भावना है। उन्होंने **जियो और जीने दो** का मन्त्र घोष किया है, उसके पीछे कुल यही प्रयोजन है कि जैसे तुम्हारे प्राण हैं वैसे ही जगत के दूसरे प्राणियों के प्राण हैं। जैसे तुम जीना चाहते हो, वैसे ही संसार के दूसरे प्राणी जीना चाहते हैं। जैसे अनुकूलता और सुख तुम्हें प्रिय है, वैसे ही संसार के दूसरे प्राणियों को भी अनुकूलता और सुख प्रिय है। इसलिये तुम खुद जियो और दूसरों को भी जीने दो।

आयतुल्ला पयासु

सबको अपने समान मानो। आत्मसाम्य की इस परम भूमिका में जीने का नाम ही अहिंसा है। यह तब संभव होगा, जब हमारे अन्तरंग में सहअस्तित्वमूलक जीवन शैली प्रकट होगी। अपने अस्तित्व के साथ-साथ दूसरे के अस्तित्व की सुरक्षा करना हमारी जबावदारी है। यह बात ध्यान रखना, दूसरों की सुरक्षा में ही हमारी सुरक्षा है। यदि हम सामने वाले को असुरक्षित करेगे तो खुद भी सुरक्षित नहीं रह पायेगे। क्योंकि आग हमारे घर में लगे या पड़ोस में, लपटें तो एक-दूसरे को प्रभावित करेंगी ही। दूसरों के अस्तित्व की रक्षा का ही नाम अहिंसा है। यह अहिंसा तब प्रकट होगी, जब दूसरों के प्रति सहानुभूति होगी।

भगवान महावीर कहते हैं कि सहानुभूति तो हल्की बात है। हमें न केवल सहानुभूति रखना चाहिए अपितु उनके साथ समानुभूति रखना चाहिए। सहानुभूति तो यदा-कदा हर कोई प्रदर्शित कर देता है, पर जो दूसरे प्राणियों के साथ समानुभूति में जीना प्रारम्भ करता है वही महावीर हो जाता है। दूसरे की पीड़ा अपनी पीड़ा, सामने वाले का सुख अपना सुख, उसका दुःख मेरा दुःख। यह अहिंसा की चरम परिणति है। यह तभी संभव होगा, जब हमारे अंतरंग में सहअस्तित्व की भावना बलवती होगी। आज उसकी बहुत अधिक आवश्यकता है। सर्वत्र आतंकवाद, उग्रवाद और हिंसा की काली छायाएँ सारी मानवता पर पड़ी हुई हैं। ये बड़ी खतरनाक हैं। क्या स्थिति बन सकती है, उसकी कल्पना नहीं कर सकते।

कहते हैं सौ डिग्री टैम्प्रेचर पर पानी भाप बन जाता है। पन्द्रह सौ डिग्री टैम्प्रेचर पर लोहा उबलने लगता है। पच्चीस सौ डिग्री टैम्प्रेचर पर लोहा भाप

बनने लगता है। लेकिन एक हाइड्रोजन बम के विस्फोट से कितना टैम्प्रेचर होगा, पता है आपको ? पचास हजार करोड़ डिग्री सेटीग्रेट।

यह मनुष्य ने इंतजाम कर रखा है। जब पच्चीस सौ डिग्री पर लोहे को भाप बनाया जा सकता है, तो यदि ऐसे बम का विस्फोट हो गया तब इस दुनिया का क्या होगा ? लेकिन चिंता नहीं करो, जब तक अहिंसा रहेगी, तब तक यह स्थिति कभी नहीं आयेगी। आज आवश्यकता है ऐसी अहिंसा के प्रति लोगों के मन में चेतना जगाने की। भले ही बड़े-बड़े आण्विक अस्त्र तैयार कर लिये गये हों, लेकिन निरस्त्रीकरण की बात भी दिनों-दिन बढ़ रही है। यह एक बड़ी विडम्बना है, हम लोग शान्ति की बातें करते हैं और युद्ध की तैयारी। आप देखिए, दुनिया के सारे मुल्कों के राष्ट्रीय बजट के आंकड़ों को, वे शान्ति के नाम पर बजट का एक बड़ा भाग सेना में लगाते हैं। शायद ही ऐसा कोई राष्ट्र होगा जो शान्ति के लिये, चरित्र के निर्माण के कोई कार्यक्रम चलाता है।

संत कहते हैं - ऐसी शान्ति के लिये यदि कोई कार्यक्रम चला लिया जाय, तो किसी युद्ध की तैयारी करने की जरूरत ही नहीं पड़ेगी। युद्ध और हिंसा किसी समस्या का समाधान नहीं हो सकते। यथार्थतः ये खुद बहुत बड़ी समस्यायें हैं। इनसे मुक्ति पाने का मार्ग हम सबको सीखना और सिखाना है। यह तभी संभव होगा जब दूसरे प्राणियों के प्राणों को अपने समान मानेंगे। यही महावीर की अहिंसा है, यही गीता की सर्वात्मभूत भावना है अथवा आत्मौपम्य दृष्टि है। जग के हर प्राणी को अपने समान मानो। जग के हर प्राणी में अपना ही प्रतिबिम्ब देखो। संवेदन की पराकाष्ठा प्रकट होने पर ही यह परिणति प्रकट हो सकती है।

भगवान महावीर ऐसे ही महावीर बनें। महावीर जयन्ती के सन्दर्भ में केवल साररूप से मैं यह कहना चाहता हूँ कि इन बिन्दुओं पर विचार करें - महावीर क्या थे, हम क्या हैं ? हमें क्या होना चाहिए ? यथार्थतः यदि हम महावीर को अन्दर से देखते हैं तो महावीर हाड-मांस की किसी काया का नाम नहीं। ये तो महावीर का भौतिक रूप है। जब हम असली महावीर के रूप को देखते हैं तो महावीर प्रेम, करुणा, दया, समता की प्रतिमूर्ति के रूप में दिखाई देते हैं। वे

वीतरागता की प्रतिमूर्ति थे। उनके रग-रग में जगत के प्रत्येक प्राणियों के प्रति संवेदना थी। महावीर अहिंसा के मसीहा थे और हम हैं हिंसा के मूर्तरूप। उनके हृदय में करुणा बसती थी, हमारे चित्त में पलती है क्रूरता। वे वीतरागी थे, हम वित्तरागी हैं। कितना अन्तर है ? हमें होना वही चाहिये जो महावीर थे। लेकिन हम क्या करें, हम आज भी अपने चक्कर में लगे हुए हैं।

महावीर की जयन्ती तो हम खूब मनाते हैं, पर काश, महावीर जैसी चेतना हमारे अन्तरंग में प्रकट हो, तो हमारा जीवन निहाल हो जाता। भगवान महावीर का जीवन प्रत्येक प्राणियों के प्रति समर्पित था।

आज के सन्दर्भ में, मुनि महावीर के जीवन का एक प्रसंग मेरे स्मरण में आ रहा है, जो बहुत अधिक प्रेरक है। भगवान महावीर जब मुनि अवस्था में विचरण कर रहे थे। भगवान महावीर का पहला चातुर्मास वर्द्धमान में हुआ था। उसका नाम अस्तिग्राम था। सबसे पहले बंगाल वालों को सौभाग्य मिला भगवान महावीर के चातुर्मास का। बंगाल के क्षेत्र में कई चातुर्मास और प्रवास उनके हुए। यह भूमि बड़ी पावन भूमि है, बड़ी संस्कारित भूमि है।

खैर, भगवान् महावीर विहार करते हुए जा रहे थे। रास्ते में एक द्वारपाल ने उन्हें रोका। जंगली रास्ता था। उसने कहा - प्रभु, इस रास्ते से न जाये। भगवान महावीर ने कोई जवाब नहीं दिया, उसकी बात को अनसुना करते हुए आगे बढ़ते गये। अब वह द्वारपाल सामने आ गया और बोला - प्रभु, यह रास्ता आप न जाये, यह रास्ता खतरनाक है। बड़ा भयावह है। भगवान महावीर ने कोई प्रतिक्रिया नहीं की। अब वह सामने आकर दोनों हाथ फैलाकर खड़ा हो गया। बोला - प्रभु, मत जाये, मेरी नौकरी का सवाल है। आप वहाँ मत जाये, वहाँ चण्डकौशिक सर्प रहता है। वह दृष्टिविषसर्प है। जिसके जहर के प्रभाव से मीलों तक पेड़ सूख गये हैं। ऊपर आसमान में उड़ने वाले पक्षी पंख फड़फड़ा कर नीचे जमीन पर गिर पड़ते हैं। आज तक जो इस रास्ते से गुजरा है वह जीवित नहीं बचा है। प्रभु, आप उधर न जाये।

लेकिन वर्द्धमान तो वर्द्धमान थे, निरन्तर गतिशील। उन पर इन बातों का

कोई असर नहीं पड़ा, वे बढ़े सो केवल बढ़ते ही रहे। आखिर वह क्या कर सकता था ? सूरज की गति को कोई रोक नहीं सकता। वह चलता है तो चलता ही जाता है। महावीर चले, और जैसे-जैसे चण्डकौशिक के इलाके के नजदीक पहुँचने लगे चण्डकौशिक ने अपना जहर हवा में घोलना शुरू कर दिया। लेकिन भगवान महावीर अप्रभावित। सहज मन्द-मुस्कान के साथ चले जा रहे हैं। महावीर जितने आगे बढ़ते हैं, चण्डकौशिक के अन्दर का क्रोध भी अधिक प्रचण्ड होता जाता है। ये क्या ? ऐसा पराभव तो मेरे जीवन में कभी नहीं हुआ। आखिर यह कौन आ गया है मेरे इलाके में। यह तो मेरे सामने एक बहुत बड़ी चुनौती है। चण्डकौशिक पूरी शक्ति से अपना जहर हवा में घोल रहा है और भगवान महावीर सहज गति से उसके नजदीक आ रहे हैं। और ठीक उसी पेड़ के तले आकर वह कायोत्सर्ग में लीन हो गये, जिस पेड़ से लिपट कर वह चण्डकौशिक अपना जहर उगल रहा था। जब देखा कि महावीर उसके घर में आकर उसे चलेज दे रहे हैं तो वह एकदम तमतमा गया और पूरी ताकत लगाकर अपना दंश महावीर के अंगूठे पर मारा। रक्त की धार निकलनी थी, दूध की धार निकल गयी।

भगवान महावीर के शरीर से दुग्ध की धार बह निकली। चण्डकौशिक बार-बार जहर उगल रहा है लेकिन भगवान महावीर का अमृत निकल रहा है। उसके जहर का कोई असर नहीं पड़ रहा है।

बन्धुओं, मेरी तो यह धारणा है कि **जहर का असर केवल उस पर पड़ता है जिसके अन्दर जहर होता है** जो सारे जगत के विष का हरण करने के लिये विषहरण बनकर निकला है उसके ऊपर विषधर के विष का असर होगा ही कैसे ? चण्डकौशिक अपने जहर को भगवान महावीर पर उड़ेलता रहा और भगवान महावीर अपने अमृत का पान उसे कराते रहे। आखिरकार महावीर के प्रेम शक्ति के आगे चण्डकौशिक के प्रचण्ड क्रोध को हारना पड़ा।

जब वह बार-बार दंश मार-मार कर और जहर उड़ेलकर थककर चूर हो गया तो उसने चेहरे को ऊपर उठाकर देखा कि आखिर यह विभूति है कौन ? जैसे ही भगवान महावीर के दिव्य शरीर पर उसकी दृष्टि गयी, वह अन्दर से आंदोलित

हो उठा। उसने जब उनके विराट रूप को देखा तो उसे अपनी असलियत का पता लग गया। उसे घोर आत्मग्लानि हुई। अरे, ये तो महान् देवता हैं, मैंने इनके साथ क्या किया ? उसे अपने कृत्य पर घोर ग्लानि हुई। पूर्वजन्मों की स्मृति हो गयी। भगवान महावीर से प्रबोधित होकर उसने संन्यास ले लिया।

बन्धुओं, ये थी भगवान महावीर के चराचर पर प्रेम के प्रेम की कहानी। आपके मन में शंका हो सकती है कि आखिर मनुष्य के शरीर से रक्त की जगह दूध की धार कैसे निकल सकती है ? यह अनहोनी-सी लगती है। मेडीकल साइन्स के हिसाब से विचार करें तो कोई भी इस पर विश्वास नहीं करेगा। लेकिन मैं कहता हूँ कि भगवान महावीर और महावीर जैसे लोगों के साथ यही संभव है। मैं तो केवल इतना कहना चाहता हूँ कि एक माँ अगर एक बच्चे को जन्म देती है, तो उस बच्चे के जन्म के साथ उसके पेट में दो कटोरा दूध उमड़ आता है। केवल इसलिये कि उसके द्वारा उत्पन्न होने वाले बच्चे के प्रति उसके मन में प्रेम है, ममता है। पर बन्धुओं, जिसके कण-कण में जगत के प्राणियों के प्रति करुणा और ममता है उसका सारा शरीर दुग्धमय हो जाय तो उसमें आश्चर्य की बात क्या है ? यह उनकी करुणाशीलता और मातृचेतस्क होने का प्रमाण है। यह भगवान महावीर की अहिंसा थी, जहाँ न केवल सहानुभूति की बात है, अपितु समानुभूति की बात है।

भगवान महावीर का दर्शन एक ऐसा विराट दर्शन है, जो किसी वर्ग की बात नहीं करता। भगवान महावीर ने कभी वर्गोदय की बात नहीं की। उन्होंने तो सर्वोदय की बात की। भगवान महावीर का दर्शन सर्वोदय का दर्शन है, प्राणीमात्र के कल्याण का दर्शन है। ऊँच-नीच, भेद-भाव की भावना से ऊपर उठकर आत्मसाम्य में जीने का दर्शन है। और वस्तुतः जब इस आत्मसाम्य की भूमिका में कोई व्यक्ति आता है तभी गहरी अध्यात्म की अनुभूति का सौभाग्य पाता है। वीतरागता की भूमिका में आने के बाद शरीरगत भेद भी खतम हो जाता है। अरे, जब शरीर से ही ऊपर उठ गये, तो शरीरगत भेद की बात ही निरर्थक हो जाती है।

हम भगवान महावीर की जयन्ती के समय उनकी करूणा, उनकी अहिंसा, उनके त्याग, उनकी सहिष्णुता, उनकी समता, उनके जीवन के गुणों को आत्मसात् करने की कोशिश करें। उन्हें अपने जीवन का आदर्श बनायें।

बन्धुओं, भगवान जिन थे, हम जैन हैं। अभी बात की जा रही थी वाजपेयी साहब की। वाजपेयी जी भले ही प्रोफेसर हैं और अभी कुलपतित्व का निर्वहन कर रहे हैं। लेकिन वे अच्छे चिन्तक और अच्छे विचार के धनी हैं। उनके विचारों से ही आपको ज्ञात हो गया होगा। मेरे सम्पर्क में लगभग दो वर्षों से हैं। उनको बहुत नजदीक से देख रहा हूँ और जान रहा हूँ।

अभी यह कहा गया कि मैं जैन होना चाहता हूँ। जैन होने के लिये किसी से सर्टिफिकेट की जरूरत नहीं होती। जैन तो आप हो ही गये हैं। इसके अतिरिक्त होने की क्या बात है। मैं उनसे कहना चाहता हूँ कि मिस्टर वाजपेयी आप जैन मत बनो। जैनी तो संसार में बहुत हैं। यदि बनना ही चाहते हो तो सच्चे अर्थों में जिन बनो। यही हम सबका लक्ष्य है। **जैन तो जन्म से बना जा सकता है, पर जिन कर्म से बना जाता है।**

भगवान महावीर जिन थे, हम जैन हो गये। हमें जिन होने का संकल्प जागना चाहिए। जिन होना तभी संभव होगा जब हम भगवान महावीर के आदर्शों को आत्मसात् करेंगे। जिन होने का मतलब, अपने आपको जीतना। अपने विकारों पर विजय प्राप्त करना। विकारों पर विजय प्राप्त करने वाला ही जिन होता है। जैन बन गये यह सौभाग्य की बात है। क्योंकि जो जैन है उसे जन्म से जिन बनने का मार्ग मिल जाता है। संस्कारों की बात है, उसको ज्यादा कठिनाई नहीं होती। लेकिन जो जैनी बन चुके हैं, उनसे कहता हूँ कि और आगे बढ़ो, जिन बनो। **भगवान महावीर ने कहा कि तुम मेरे गीत मत गाओ, अपने भीतर के महावीर को जगाओ। गीत गाने का काम तो हम हमेशा करते रहते हैं, अपने अन्दर के महावीरत्व को जगाने का पुरुषार्थ हमें करना चाहिए। वह पुरुषार्थ जब प्रकट होता है तभी हमारे जीवन की चरम**

और परम उपलब्धि घटित होती है। उसे अपने भीतर घटित करने की आवश्यकता है।

हम जिन बनें। जैन तो हम बन चुके हैं। कर्म को पवित्र बनायें। अपने जीवन स्तर को ऊँचा उठायें तो जैन से जिन जरूर बनेंगे। वाजपेयी जी को हमारा आशीर्वाद है। उन्होंने यह कामना की कि हमारा पुनर्जन्म खत्म हो। वास्तव में पुनर्जन्म तभी खत्म होगा, जब आप जिन बनोगे। जिन बनने की प्रक्रिया में आपको आज से ही लग जाना है। आप जब जिन बनोगे तो जैन तो अपने आप हो जाओगे।

दूसरी बात, अभी आपके बीच सतना की महापौर विमला जी कह रही थी। वह एक श्रद्धावती महिला हैं। मैंने उनको देखा सतना के प्रवास में। मध्यप्रदेश के प्रवास में तो ऐसा रहा है कि हमें केवल जैनों ने नहीं, बल्कि जैनों से बढ़कर जिन लोगों को हम जैन नहीं कहते, उन लोगों ने भी सम्मान दिया है। उतनी ही श्रद्धा, स्नेह और प्रेम दिया है।

सब लोग साथ मिलकर के जब चलते हैं तो एक अलग वातावरण की अनुभूति होती है। वह मैंने वहाँ के पाँच माह के प्रवास के दौरान निरन्तर देखा। शायद इसी भावना के साथ ये लोग आये हैं। अपने क्षेत्र में आगे बढ़ें और आगे बढ़ने के साथ-साथ जो मूल संस्कार हैं, उन्हें और अधिक पल्लवित करें। मेरा उनके लिये यही आशीर्वाद है।

अवधेशप्रतापसिंह विश्वविद्यालय रीवाँ, में जो उन्होंने जैन शोधपीठ की स्थापना की है, यह उनकी व्यक्तिगत अभिरुचि का परिणाम है। आप लोगों को मालूम नहीं कि इस शोध पीठ की स्थापना का परिणाम क्या होगा। जैनी लोग पूजा-पाठ और अन्य आडम्बरों के आयोजनों में बहुत रुचि लेते हैं, रूपया खर्च करते हैं, लेकिन जैनधर्म, जैन कल्चर, जैन संस्कृति को आगे बढ़ाने के लिए हम बहुत कम ध्यान दे पाते हैं। कलकत्ता जैन समाज को इस विषय में सोचना चाहिए।

ऐसे कार्यों में यदि आपका द्रव्य लगेगा, उसका जो परिणाम आयेगा उसे पीढ़ियों कभी भुला नहीं सकती। पीढ़ियों का उद्धार होगा। हम देश और विदेशों

में जैनधर्म को ठीक ढंग से प्रस्तुत करना चाहते हैं तो ऐसे शोध पीठों की स्थापना करने की बहुत ज्यादा जरूरत है। आपको सुनकर आश्चर्य होगा, कि उस शोध पीठ के लिये, आपके बीच जो मिश्रा जी बैठे हैं, वे सतना से आये हैं, पिछले वर्ष जब वे राँची आये थे तो उन्होंने अपनी ओर से एक लाख रुपये का अनुदान दिया था।

भावनाओं का अंदाज कीजिए। ऐसी संस्थाओं को हमें संपोषण देना चाहिए। ताकि वे बढ़ें। यह काम भी हमें वाजपेयी जी के रहते कर लेना चाहिए। क्योंकि इन लोगों की भूमिका तो आज है, जब तक इनका कार्यकाल है तब तक रहेगी। मैं चाहता हूँ कि समय रहते वह फल-फूल जाये।

भगवान महावीर की जयन्ती पर हमें कलकत्ता वालों से कहना चाहता हूँ कि इस योजना को हम पूरा करें, तभी महावीर के प्रति हमारी श्रद्धा-भक्ति सही मानी जायेगी। इसे आगे बढ़ाने की कोशिश करना चाहिए।

हमने महावीर को सीमित कर रखा है। देश-विदेशों में बहुत कम लोग भगवान महावीर के बारे में जान पाते हैं। जब ठीक ढंग से शोध-खोज के कार्य होंगे तब यह कार्य आगे बढ़ेगा। इसके लिये हमें प्रयास करना चाहिए और ऐसे कार्यकर्ताओं को निरन्तर प्रोत्साहित करते रहना चाहिए।

आज का दिन मेरे जीवन का बड़ा मूल्यवान दिन है। सच्चे अर्थों में आज मेरा जन्म दिन है। पर आप लोग बाकी बातें तो कह रहे हैं, जन्मदिन की बधाइयाँ कोई नहीं दे रहा। सच में मेरा जन्म तो आज हुआ है और मुझे जन्म देने वाले अभी बहोरीबन्द में बैठे हैं। ठीक तीन बजकर बारह मिनट के आसपास मेरा जन्म हुआ था। मेरे जीवन की यह पावन घड़ी है। मुझसे पूछा गया कि - महाराज, मुनि दीक्षा धारण करते समय आपकी प्रथम अनुभूति क्या हुई? जैसे ही मेरी मुनि दीक्षा की विधि पूरी हुई, मेरे तन से परिग्रह का आडम्बर उठा, मैंने अनुभव किया मैं बिलकुल हल्का हो गया। अब पंचपरमेष्ठियों में स्थान पाने का अधिकारी हो गया हूँ।

जिस दिन मेरी दीक्षा हुई थी, उस दिन मैंने आचार्य महाराज से यही प्रार्थना की थी कि अभी तक मैं भगवान महावीर का अनुयायी था। आप भगवान महावीर का प्रतिनिधि बना दें तो भी मेरे जीवन का कल्याण हो जायेगा। यह दिगम्बर मुद्रा भगवान महावीर का ही प्रतिरूप है। मैं तो यही चाहता हूँ कि इस मार्ग में निरन्तर बढ़ता रहूँ।

मैं आपको एक बात बताना चाहता हूँ, कि कुछ प्रेरणायें हमको लेना चाहिए। अभी टीकमगढ़ के म्यूजिक ग्रुप को दो बार अवसर इसलिए दिया गया कि वे कोई प्रोफेशनल लोग नहीं हैं। बहुत दूर से आये हैं। ऐसे लोगों को अपना समय काट कर देना उनका सम्मान है।

ये व्ही० के० जैन आडीटर है ए. जी. डिपार्टमेंट में। अपनी नौकरी का समय छोड़कर आते हैं। उनके साथ जो बहनें हैं, वे भी गाती हैं। धार्मिक कार्यक्रमों में उन्हें जो कुछ भी मिलता है वह वहाँ की गौशाला को दे दिया जाता है। एक पैसा वे अपने लिये नहीं बचाते। कितना बड़ा आदर्श है। आज ऐसे लोगों का जितना सम्मान किया जाय कम है। इस तरह का काम और अपना समय निकाल कर देना और गौशाला जैसी संस्थाओं को चलाना, बहुत अच्छी बात है। अभी ये लोग दिव्यघोष के माध्यम से श्रवणबेलगोला में भी धर्मप्रभावना करके आये हैं।

मध्यप्रदेश में ऐसे अनेक संगठन हैं। इन युवाओं को प्रोत्साहन मिलना चाहिए। इन युवाओं को संगठित करने की भावना से ही एक राष्ट्रीय महासंघ की कल्पना उभरी थी। जिसकी औपचारिक घोषणा २९ जनवरी को डफसन में की गयी थी। उसका पहला अंकुर कलकत्ता में फूट गया है।

मुझे प्रसन्नता है कि यहाँ के युवाओं ने भी कमर कस ली है। मैंने ऐसा सुना है कलकत्ता में जो कुछ होता है वह सारी दुनिया से अलग होता है। हमसे ऐसा कहा जाता है कि महाराज, जो कलकत्ता में गाड़ी चला लेता है वह सारे संसार में गाड़ी चला लेता है। मेरी गाड़ी कलकत्ता में चली नहीं, दौड़ रही है। इसलिये मुझे प्रसन्नता है। मैं यहाँ के सारे युवाओं से कहना चाहता हूँ आज समयाभाव के कारण वे ठीक ढंग से अपनी प्रस्तुति नहीं कर पाये। पर हमारा ध्येय कार्यक्रम और मंचों

तक सीमित नहीं होना चाहिए। हमारा ध्येय कार्यो से जुड़ा होना चाहिए। मुझे विश्वास है, ये कर्मठ कार्यकर्ता तह-ए-दिल से आगे बढ़कर कार्य करेंगे।

आज की इस पावन घड़ी में अपने परम पूज्य गुरुवर के चरणों में अपनी श्रद्धा, अपनी विनयांजलि अर्पित करना जरूर चाहता हूँ, जिनकी कृपा से मैं कंकर से शंकर बना हूँ। मैं आखिर था क्या? मेरा जो कुछ भी अस्तित्व है, वह सब उनकी ही देन है।

कोई पाषाण की मूर्ति में जब सूर्य मन्त्र दे दिया जाता है, तो वह भगवान बन जाते हैं। मैं पाषाण था, उन्होंने मन्त्र फूँका, उससे मैं जो हुआ, आपके सामने हूँ।

बाँस के टुकड़े का अपना कोई महत्त्व नहीं। बाँसुरी केवल बाँस का टुकड़ा है। लेकिन उससे संगीत तब फूटता है, जब कोई उसमें फूँक मारता है। मैं तो बाँस का टुकड़ा था, उन्होंने फूँक मारी, आप मुझे बाँसुरी कहने लगे। सब कुछ उनका ही है, इसलिये मैं उनके चरणों में हार्दिक विनयांजलि अर्पित करना चाहता हूँ।

जब दीक्षा हुई तो आचार्य महाराज से कहा - मुझे कुछ निर्देश दें। उन्होंने दो बातें कही थीं, जो मेरे मानसपटल पर स्थायी रूप से अंकित हैं। उन्होंने पहली बात तो यह कही थी कि - तुम यह मत समझना कि मुनि बन गये तो मोक्ष मिल गया। मुनि बनने से तो मोक्षमार्ग की शुरुआत हुई है।

दूसरी बात, मैं तुम्हें जो कुछ दे सकता था, दे दिया। अब तुम्हें अपना पथ स्वयं बनाना है।

ये दो बातें हमारे हृदय पर स्थायी रूप से अंकित हैं। वस्तुतः **अप्पदीवो भव** का मार्ग है। गुरु तो केवल प्रकाश दिखा सकते हैं। चलना तो हमें ही पड़ेगा। हमें आगे बढ़ना है। हम रोज यही कामना करते हैं कि भगवन् ! जिस उद्देश्य से इस मार्ग को अंगीकार किया है, उसी मार्ग में निरन्तर बढ़ता जाऊँ।

आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा - अपनी दीक्षा की तिथि को रोज याद करो, ताकि अपने जीवन के ध्येय से जुड़े रहो। जब मैं आँख खोलता हूँ तो यही सोचता

हूँ कि आज फिर एक नया दिन मिला, जिससे मैं अपने रत्नत्रय का पालन करूँगा। मेरा हरदिन रत्नत्रय से भरा हो। मैं अपने जीवन के अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त करूँ।

बहुत सारी बातें आप सब लोगों ने की। लेकिन मैं अपने आपको बहुत छोटा सा साधक मानता हूँ। और साधक ही बना रहना चाहता हूँ। इससे आगे मैं बढ़ना नहीं चाहता। अतः आपकी दृष्टि में मैं कहाँ हूँ, मुझे पता नहीं! पर मेरी दृष्टि क्या है, उसे केवल इन पंक्तियों में कहता हूँ, जिसे कभी जवाहरलाल नेहरू दुहराया करते थे।

**द उटस आर लवली डार्क एण्ड डिप
बट आइ हेव प्रामिस टू क्विप
आई हेव माइल्स टू गो।
बिफोर आइ स्लीप।**

बच्चन जी ने इनका सार्थक अनुवाद किया है। वे कहते हैं -

**गहन सघन वन मनमोहक वन तरु मुझको आज बुलाते हैं,
किन्तु किये जो वायदे मैंने याद मुझे आ जाते हैं।
अभी कहाँ आराम बंदा यह मूक निमन्त्रण छलना है,
अभी तो मुझको मीलों, मुझको मीलों चलना है ॥**

हम तो अभी चलना शुरू किये हैं, अभी तो मुझे चलना है। आप हमें कितना भी लुभाओ, ठहरेंगे नहीं। यदि आप मेरे साथ चलने को राजी हों तो मुझे कोई तकलीफ नहीं। लेकिन साधक का काम **चरेवैति चरेवैति...** चलते चलते रहिये, एक पल को रुके तो ना जाने कितने पिछड़ जायेंगे।

भगवान महावीर गौतम से कहते हैं -

खणमपि मा पमाए गोयमा !

हे गौतम ! एक क्षण का भी प्रमाद मत करो। क्योंकि एक क्षण का प्रमाद तुम्हें अनन्त जन्म पीछे ढकेल सकता है। जिसके अन्तरंग में ऐसी जागृति होती है, वही अपने परम ध्येय को उपलब्ध करने का अधिकारी बन सकता है।

भगवान महावीर की जयन्ती और अपने जन्मदिवस के पावन प्रसंग पर मैं पहले भगवान महावीर और उससे पहले अपने गुरुदेव को अपनी प्रणति अर्पित करता हूँ। उनके चरणों में श्रद्धा-भक्ति अर्पित करने के लिए कुछ पंक्तियाँ मेरे मानस में उमड़ रही हैं। उसे सुना करके मैं विराम दे रहा हूँ -

क्या मेरा है जो आज तुम्हें दे डालूँ ।

मेरे अपने शब्द कहीं जो गा लूँ ॥

मिट्टी की अंजलि में मैंने जोड़ा स्नेह तुम्हारा

बाती की थाती दे तुमने मेरा भाग्य सम्हारा

करूँ आरती तो भी जलते हैं वरदान तुम्हारे

अपने प्राणों के दीप कहीं जो जला लूँ

क्या मेरा है जो आज तुम्हें दे डालूँ ।

तुमने निज वचनों से निज अन्तर के दम खोले

वाणी को मुखरित कर डाला वह चाहे जो बोले

भरी ज्ञान के रस से तुमने मेरी खाली प्याली

अब उसे तुम्हारे प्याले क्या डालूँ

क्या मेरा है जो आज तुम्हें दे डालूँ ।

फिर मैंने हीरे मोती सी आँसू की निधि पा ली

पर मरुथल के वक्षस्थल से किसने राह निकाली

खारे जल का अर्घ चढ़ाकर कौन बने अपराधी

आँसू से अपने नयनों को नहला लूँ

क्या मेरा है जो आज तुम्हें दे डालूँ ।

आप भगवान महावीर की जयन्ती और मुनि की दीक्षादिवस को मना रहे

हो। दूसरों के जन्म दिन में आप कुछ गिफ्ट देते हो। अब मैं भी कुछ गिफ्ट चाहता हूँ। देने को तैयार हो या नहीं। वह गिफ्ट नहीं जो बाजार से लाते हैं। मैं केवल आपसे यही चाहता हूँ कि आपके जीवन की जो सबसे बड़ी बुराई है उसे मेरे चरणों में लाकर रख दें। मैं उसे स्वीकार कर लूँगा और उसे अच्छा बनाकर फिर से आपको दे दूँगा। एक-एक बुराई सभी लोग यहाँ छोड़ें।

कम से कम चर्मनिर्मित वस्तु को त्यागने का नियम तो सबको लेना चाहिए। जिन्होंने आरती का सौभाग्य पाया है उनको भी विशेष रूप से आज के दिन कुछ अपने जीवन के लिये करना चाहिए। इसी भावना के साथ अपनी वाणी को विराम दे रहा हूँ।

८-४-२००६ चौरंगी

जगार्ये दृढ-इच्छाशक्ति

दुर्योधनी प्रवृत्ति

**एसो पंचणमोयारो सव्वपावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होइ मंगलं ॥**

एक जिज्ञासु किसी संत के पास उपदेश की कामना से पहुँचा। संत बहुत पहुँचे हुए थे। उन्होंने उसके मनोभावों को अच्छे से जान लिया और मुस्कुराकर पूछा - बताओ, हिंसा करनी चाहिए ? नहीं, बहुत बुरी चीज है। झूठ बोलना चाहिए ? नहीं, यह गंदी आदत है। चोरी ? बुरा कर्म है। कुशील निंद्य आचरण है। परिग्रह की लिप्सा ? आत्मघातक है। पुनः पूछा - अहिंसा ? यह परम धर्म है। सत्य ? सृष्टि का आधार है। आचौर्य ? नैतिकता का प्रतिमान है। ब्रह्मचर्य ? मनुष्य का आभूषण है और संतोष ? सबसे बड़ा धन है।

संत ने एक क्षण साँस ली और कहा - क्रोध करना चाहिए ? नहीं, बहुत बुरी बीमारी है। अहंकार ? मनुष्य की बहुत बड़ी दुर्बलता है। मायाचारी और लोभ-लालच ? ये भी बहुत बुरी चीज हैं। क्षमा धारण करना चाहिए ? सब धर्मों का आधार है। विनम्रता ? मनुष्य की सबसे बड़ी विशिष्टता है। सरलता ? हमारे व्यक्तित्व का शृंगार है। पवित्रता ? हमारे जीवन की मूल निधि है।

संत ने कहा - अब बताओ तुम्हें क्या उपदेश दूँ ? जितनी बातें मैं उपदेश में सुनाता हूँ, वे सभी तुम जानते हो, फिर और अन्य क्या उपदेश दूँगा ?

दुनिया में जितने भी धर्म हैं, धर्मग्रन्थ हैं और उनके उपदेशक हैं, उन सबका सार इतना ही है कि पाप को छोड़ें और कषाय को छोड़ें। व्रत को अपनाये, संयम को अपनाये। इसके अलावा और क्या उपदेश हो सकता है।

हम अपने उपदेश की शुरुआत कहीं से भी करें घूम-फिरकर आना तो वहीं होता है। हम सब यह जानते हैं कि पाप हमारी आत्मा के पतन का कारण है। कषाय आत्मा को दुःखी करने वाली है। इस सबको हम और आप अच्छे से जानते हैं। लेकिन यह विडम्बना ही है कि सब कुछ को जानने के बाद भी पाप और कषाय में ही प्रवृत्त होते हैं। ऐसे जानने से क्या मतलब ? हमारी प्रवृत्ति दुर्योधनी होती जा रही है। जो यह कहता है -

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः, जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः ।

मैं धर्म को जानता हूँ, पर उसमें प्रवृत्त नहीं होता। अधर्म को जानता हूँ पर उससे दूर नहीं होता। ऐसा जानने का कोई लाभ नहीं है।

संत कहते हैं जानो ही नहीं, मानो। सुनो, समझो और स्वीकार करो। हम सुनते हैं, समझते हैं, लेकिन स्वीकारने के क्षेत्र में अक्सर पीछे रह जाते हैं। उद्धार हमारा तभी होगा, जब तत्त्व को हम भीतर से स्वीकारेंगे। और एक बार व्यक्ति जब भीतर से स्वीकार कर लेता है तो सुधार की प्रक्रिया अपने आप प्रारम्भ हो जाती है। बिना स्वीकार्य के सुधार असंभव है। इसलिये यदि हम अपने जीवन का रूपान्तरण चाहते हैं, जीवन में सुधार चाहते हैं तो जो हम सुन रहे हैं, उसे न केवल सुनें, अपितु उसे स्वीकारें। इस मानसिकता से सुनें कि जो भी बातें कही जा रही हैं वे मेरे हित के लिये हैं। ये मेरे जीवन के लिये सही मार्गदर्शक हैं। इसे हमें स्वीकारना है। लेकिन यह कैसी विचित्रता है, सड़क पर आप लोग चलते हैं, लाल बत्ती दिखते ही आपकी गाड़ी कितनी ही स्पीड में क्यों न हो आप तुरन्त रोक देते हैं। एक पल का भी विलम्ब नहीं होता। लाल लाईट देखी और गाड़ी रोकी। किसने आपको रोकने के लिये बाध्य किया।

लाल लाईट देख करके आपने गाड़ी को क्यों रोका ? इसलिये कि यह तो संकेत है, सिम्बल है, कि मैं यदि लाल लाईट को देखकर और उसकी उपेक्षा करके आगे बढ़ूँगा तो अपने आपको दुर्घटना से नहीं बचा सकूँगा। मुझे समझ में नहीं आता कि बाहर की लाल लाईट को देखकर आप अपनी गाड़ी को तो तुरन्त रोक लेते हो, और हम लोग जो इतने दिनों से लाल लाईट दिखा रहे हैं उसको आप क्यों नजरअंदाज करते आ रहे हैं।

संत के उपदेश, उनकी हिदायतें, उनकी वर्जनायें एक प्रकार की लाल लाइट हैं जो तुम्हें दुर्गति में जाने से बचाती हैं। उनको हम समझें। उनको तो हम अनदेखा कर देते हैं। यह हमारे विश्वास की कमी है। लाल लाइट की उपेक्षा हम इसीलिये नहीं करते हैं कि हमने प्रेक्टिकली देखा है। लाल लाइट किसी ने क्रॉस कर दिया, नजरअंदाज कर दिया तो अगले ही क्षण उसको परिणाम भुगतना पड़ा है।

ध्यान रखना, यहाँ दिख भले ही नहीं रहा है, पर परिणाम तो यहाँ भी भुगतना पड़ रहा है। यह एक सिद्धान्त है, इस पर जिसका विश्वास होता है उसे ज्यादा उपदेश की जरूरत नहीं होती। थोड़े से संकेत में भी बहुत कुछ समझ लेता है। जिसका इस पर विश्वास नहीं होता उसको कितना ही पढ़ाओ, वह सुआ-सा पढ़ जरूर लेता है, पर करता कुछ नहीं है।

तोता रटन्त ज्ञान

तोते की स्थिति बड़ी विचित्र होती है, तोते के लिये कहा जाता है, सिखाया जाता है कि बहेलिया आयेगा, ललनी लटकायेगा, जाल फैलायेगा, तोते उस पर बैठेंगे, ललनी झूलेगी, तोते घबड़ायेंगे, हमें अब नहीं घबराना, हमें उड़ जाना है। यह तोते को सिखा दिया गया। किन्तु तोते फिर-फिर उस बहेलिया की ललनी पर झूलते हैं।

ललनी समझते हो क्या होती है ? तोते को पकड़ने के लिये एक विशेष प्रकार का प्रबन्ध होता है। रस्सी होती है। रस्सी में करीब नौ-नौ या दस-दस इंच के लकड़ी के टुकड़े लगे रहते हैं। जो फंदे में फँसे हुए रहते हैं। जब तोते उस पर बैठते हैं तो तोते के वजन से ललनी झूल जाती है। तोते के मन में यह बहम हो जाता है कि इसे मैंने छोड़ दिया तो मैं गिर जाऊँगा। इसलिये वे और जोर से ललनी को पकड़ लेते हैं। ललनी के पकड़े रहने से वे शिकारी की पकड़ में आ जाते हैं। इसलिये कबीर कहते हैं -

**कहत कबीर ललनी के सुगना, तोहे कोन पकड़ो ।
अपनपौ आप ही विसरो ।**

वह तोता, जिसे यह सिखाया गया है, कि हमें इस पर नहीं बैठना, यदि ऐसी कोई स्थिति आये तो उड़ जाना है, वहाँ ठहरना नहीं है। यह बात जो उसे सिखाई गयी है, वह ललनी में बैठने के बाद भी गाता तो वही रहता है, पर आकाश में उड़ने की अनन्त क्षमता को भूल जाता है।

प्रामाणिकता सबसे पहले

संत कहते हैं - जो हमने सुना है, समझा है, उसे अन्दर से स्वीकार करो। बिना स्वीकार के हमारे जीवन का सुधार नहीं होगा। बन्धुओं, आज के इस दौर में जब हम देखते हैं तो धर्मप्रवचन और उपदेशों की मात्रा बहुत बढ़ी हैं। लोगों का रुझान भी बहुत तेजी से बढ़ा है। साधु-संतों के पास समागम पाने वाले लोग आज काफी मात्रा में दिखाई पड़ते हैं। आज जितनी प्रवचन सभायें होती हैं, आज से पचास वर्ष पहले उस तरह की व्यवस्थायें नहीं थीं। आज के और आज से पचास वर्ष के पहले व्यक्ति के आचरण की जब हम तुलना करते हैं तो हमें बहुत कुछ सोचने को मजबूर होना पड़ता है। आज से पचास वर्ष पहले के जो जैनी थे वे बड़े विशुद्ध जैन थे। वे अपने आचार-विचार में बहुत दृढ़ रहा करते थे। जैनी अहिंसा के एक प्रकार के प्रतिमान हुआ करते थे। नैतिकता और प्रामाणिकता उनकी रग-रग में घुली हुई होती थी। यही हमने सुना है कि यदि अदालत में कोई जैनी बुजुर्ग गवाही देने के लिये जाते थे तो उन्हें अलग से कसम खाने की जरूरत नहीं पड़ती थी। हम जैन हैं यह कह देना ही पर्याप्त होता था। यह जैनियों का बहुत बड़ा आदर्श था। क्यों ? उस समय जग में यह सुविख्यात था कि जैन लोग झूठ नहीं बोलते। जैनी अप्रामाणिकता और अनैतिकता के मार्ग को अंगीकार नहीं करता। यह उस युग में बहुत ज्यादा प्रसिद्ध था। इसी के कारण जैनियों को लोक में एक प्रकार से असाधारण प्रतिष्ठा प्राप्त थी। लेकिन आज समय बदला है। कहाँ तो जैनी इतनी ऊँचाई पर थे। लेकिन आज देखें तो जितने बड़े स्कैण्डल प्रकाश में आते हैं किसी न किसी रूप में किसी न किसी जैनी का उसमें इन्वॉल्वमेंट देखने को मिलता है।

क्यों खो गई वह प्रतिष्ठा और क्यों हुआ इतना पतन ? कभी आपने विचार किया। पचास वर्ष पहले इस प्रकार व्यसनप्रियता, स्वैच्छाचारिता, स्वैरविहार,

उन्मुक्त आचरण आदि जैनियों में देखने को नहीं मिलता था। आज ये सभी चीजें हैं। मैं मानता हूँ कि जैन ही क्या हर समाज में दिनों-दिन पतन हुआ है। बहुत तेजी से पतन हुआ है। भौतिकता के प्रवाह में सब बहने लगे हैं। लेकिन फिर भी जैन समाज को अभी सोचने की बहुत जरूरत है। हम महावीर भगवान की जयन्ती मनाते हैं, बड़े-बड़े उत्सव मनाते हैं। पर बन्धुओ, महावीर केवल मन्दिर की पूजा तक सीमित नहीं रहना चाहिए। महावीर हमारे जीवन में प्रतिष्ठित होने चाहिए।

हम महावीर की जय-जयकार तो खूब करें, और महावीर के सिद्धान्तों की अपने ही हाथों बलि चढ़ायें, तो जयकार किस अर्थ का ?

गाँधी जी कहा करते थे, वे लोग, जो मेरी जय बोलते हैं और विदेशी कपड़ा पहनते हैं। वे मुझे गाली दें तो ज्यादा अच्छा है। एक तरफ मेरी जयकार और दूसरी ओर मेरे सिद्धान्तों की खुली उपेक्षा।

मैं भगवान महावीर के अनुयायियों से कहना चाहता हूँ कि एक तरफ हम भगवान महावीर की पूजा-आराधना करते हैं, और दूसरी तरफ अपने आचार-व्यवहार में भगवान महावीर के सिद्धान्तों की खुली अवमानना करते हैं। तब आप बताइये कि यह महावीर की सही पूजा है या केवल पूजा का मज़ाक ? यह आपको सोचने की जरूरत है। हम कर क्या रहे हैं ? आदर्श तो हमने बहुत ऊँचे बनाये, लेकिन उनके अनुसरण में कितने पीछे होते जा रहे हैं।

संत कहते हैं - केवल आदर्श बनाने से कार्य नहीं होगा। आवश्यकता है उसके अनुसरण की। यह सब क्यों हुआ ? यह सब हमारी निष्ठा की दुर्बलता का परिणाम है। हमारी धार्मिक निष्ठाएँ दिनों-दिन कम होती जा रही हैं। हमने अपने उसूलों और सिद्धान्तों को गौण करना शुरू कर दिया। अपने व्यवहार और टिपटाप को बढ़ाने में ही अपनी सारी बढ़ाई मान ली। कितना भ्रम पाल लिया। ध्यान रखना, हर व्यक्ति और हर समाज की एक पहचान होती है। वह पहचान तभी कायम होती है, जब हम अपनी सामाजिकता और सामाजिक परम्परा या सांस्कृतिक विरासत को जीवित रखें। यदि उसे गौण कर देंगे तो हमारी पहचान एक पल में

खण्डित हो जायेगी। जो व्यक्ति अपनी अस्मिता को नष्ट कर देता है वह सम्मानपूर्वक जी भी नहीं सकता। आज जैनियों के लिये बहुत चिन्तन का विषय है कि वे अपनी जैनत्व की कसौटी पर कितने खरे उतर रहे हैं। जैनत्व को सुरक्षित रखने का दायित्व प्रत्येक उस व्यक्ति का है जो अपने आपको जैनधर्म का अनुयायी मानता है, जो जैनधर्म की जय बोलता है। यदि वही भुला देगा तो हम किससे अपेक्षा रखेंगे ? क्या जैनधर्म का पालन कोई गैर-जैनी करेगा ? यह विचार करने की जरूरत है।

भगवान महावीर से लेकर आज तक जो जैनधर्म की परिपाटी आयी, वह यूँ ही नहीं आयी। इसमें बड़े-बड़े मुनियों, आचार्यों और श्रावकों को अपना त्याग अर्पित करना पड़ा। अपना बलिदान अर्पित करना पड़ा। उसके परिणामस्वरूप यह परम्परा यहाँ तक आयी है। आगे भी हमें अपनी परम्परा को इसी तरह से बढ़ाने की जिम्मेदारी सम्हालनी चाहिए, ताकि पीढ़ियाँ जैनधर्म के संस्कारों से युक्त होती जायँ। आज हमारे आचार-विचार और खान-पान में जो विकृतियाँ आ रही हैं, उसे सुधारने के लिये सार्थक पहल करने की आवश्यकता है। यदि समय रहते हम नहीं चेतेंगे तो आने वाला समय बहुत खराब होगा और उसके परिणाम अत्यन्त भयानक होंगे। उससे अपने आपको बचाने की जरूरत है।

आवश्यकता है केवल निष्ठा की। हमारी निष्ठा दिनों-दिन दुर्बल होती जा रही है। उसे जगाइये। किसी दार्शनिक से किसी ने पूछा - राष्ट्र की रक्षा के लिये मूलतः कितनी चीजों की आवश्यकता है ? उन्होंने कहा - अनाज, सैनिक और आस्था। पुनः पूछा गया - यदि इनमें से किसी एक की कमी हो, तो किसके बिना काम चल सकता है ? जबाब था - सैनिक के अभाव में अनाज और आस्था से काम चल सकता है। यदि किन्हीं दो चीजों का अभाव हो तो ? उन्होंने कहा - सैनिक और अनाज के बिना तो कोई राष्ट्र सुरक्षित रह सकता है। लेकिन आस्था के अभाव में वह सुरक्षित नहीं हो सकता। आस्था है तो राष्ट्र है, आस्था है तो संस्कृति है, आस्था है तो परम्परा है, आस्था है तो समाज है, आस्था है तो धर्म है। जिस दिन आस्था खतम, उस दिन सब कुछ खतम। पर मुश्किल यह है कि आज हमारी

आस्था चरमराती जा रही है।

बन्धुओं, इसे सम्हालने की जरूरत है। कल यहाँ पर एक बैठक रखी गई, समाज में व्याप्त बुराईयों के उन्मूलन के लिये। बहुत सारी बातें आयी। किसी भी बड़ी बुराई का आपरेशन करने को जा रहे हैं तो उसमें मशक्कत तो होगी ही। बिना एनेस्थीसिया के कोई आपरेशन सक्सेज भी नहीं होता। लेकिन मैं आपसे उसी बात को कह रहा हूँ क्योंकि आज के लिये यह बात बहुत जरूरी है और हम लोग चूक कहाँ करते हैं? यह सोचने की जरूरत है। हमने अपनी सारी प्राथमिकताओं को किस कदर दरकिनार करना शुरू कर दिया और उसमें अपने आपको हम गौरवान्वित महसूस करते हैं, यह बहुत आश्चर्य की बात है।

रात्रिभोजन : अपनी परम्पराओं का मखौल

एक समय था जब किसी गैर-जैन व्यक्ति के यहाँ भोज होता था तो उनके कार्ड में लिखा जाता था - जैनियों के लिये सूर्यास्त से पूर्व भोजन की व्यवस्था है। और अब समय आ गया कि जैनी के यहाँ से किसी भोज का कार्ड आता है तो उस पर लिखा रहता है कि भोजन सायं चार या पाँच से आपके आगमन तक। अर्थात् बारह बजे, एक बजे, दो बजे, तीन बजे, कितने बजे भी आयें सब चलेगा। और इसके माध्यम से हम जैनधर्म की जय करेंगे। जैनधर्म की प्रभावना करेंगे। हमें सोचने की जरूरत है कि हम कहाँ थे और कहाँ चले गये।

बन्धुओं, रात्रिभोज जैनधर्म की दृष्टि से सर्वथा निषिद्ध है। पहले जैनियों की यह पहचान थी कि जैनी लोग सूर्यास्त से पूर्व भोजन कर लेते थे। दिन में ही भोजन करते थे। और आज किसी भी जैनी से बात करो, यदि किसी अजैन ने उनके लिये दिन में भी प्रबन्ध किया है तो जैनी कहता है कि हमारा तो चलता है। ऐसा कह कर वह अपनी पूरी परम्परा को भी चलता कर देता है। वह नहीं सोचता कि हमारी पहचान कहाँ खो रही है। अपनी पहचान को कायम रखने का दायित्व हम सबका है।

इसके साथ बहुत सारे वैज्ञानिक तथ्य भी जुड़े हुये हैं। धर्म की दृष्टि, अहिंसा की दृष्टि, स्वास्थ्य की दृष्टि और विज्ञान की दृष्टि से विचार करें तो दिन में

ही भोजन उपयोगी है।

सबसे पहली बात मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ कि आप लोग अपनी दिनचर्या को व्यवस्थित कीजिए और वैयक्तिक स्तर पर दिन के भोजन का अभ्यास बनाइये। दिन का भोजन हर अर्थ में लाभप्रद है। हम यह जानते हैं कि सूर्य के प्रकाश में अल्ट्रावायलेट रेज होती हैं। दुनिया के किसी भी अन्य प्रकाश में सूर्य जैसी प्रासुकता नहीं होती। सूरज की किरणों में केवल प्रकाश ही नहीं होता, प्रासुकता भी होती है। आप देखिए, जब ठंड के दिनों में ऊनी कपड़े निकालते हो तो उन्हें कहाँ सुखाते हो, सूर्य में या हीटर में या हैलोजन की लाईट में? दूसरे प्रकाश में वे सूख भले ही जाय, पर दुर्गन्ध नहीं जायेगी। दुर्गन्ध तो केवल सूर्य के प्रकाश में ही उड़ती है। यह सूर्य के प्रकाश की प्रासुकता का प्रतीक है। सूर्य के प्रकाश में दिन में सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति नहीं होती, और जो पहले से उत्पन्न हुए होते हैं वे यहाँ-वहाँ छुप जाते हैं। जैसे ही सूर्यास्त होता है अनेक जीवों की उत्पत्ति होना आरम्भ हो जाती है। जो इधर-उधर छिपे हुए हैं उनका संचार शुरू हो जाता है। ऐसी स्थिति में यदि रात्रि में हम कुछ भी खाते-पीते हैं तो हमारे भोजन में उनके समाविष्ट होने की परिपूर्ण संभावना होती है। यदि वे भोजन में सम्मिलित हो जाते हैं तो हम अहिंसक नहीं कहला सकते।

अहिंसा परमो धर्म की जय बोलने वालों को इस बात को सोचना चाहिए कि जब उसमें जीव हिंसा की संभावना है तो उस कौर को किस तरह हम अपने मुंह से नीचे उतार रहे हैं। हिंसा से बचने के लिए तथा भोजन के प्रति आसक्ति और गृद्धता घटाने के लिये दिन में भोजन का प्रावधान किया गया है। रात में भोजन मत कीजिए, दिन में ही भोजन कीजिए। यही परम्परा थी।

आप सुनकर ताज्जुब करोगे, चीनी यात्री ह्वेनसांग जब भारत आया। उसने अपनी यात्रा का विवरण लिखा। उसमें एक बहुत अच्छी टिप्पणी की है। वैशाली का वर्णन करते हुए कहा - मैंने वहाँ भारी संख्या में निर्ग्रन्थों को देखा। निर्ग्रन्थ कहलाते हैं दिगम्बर मुनि। उनके अनुयायी भी निर्ग्रन्थ कहलाते हैं। पुराने समय में जैनधर्म का एक नाम निर्ग्रन्थ भी था। उसमें लिखा है कि समाज में उनकी अतिरिक्त प्रतिष्ठा थी। सबसे ज्यादा प्रतिष्ठा और सम्मान उनको मिला करता था।

उनकी एक विशेषता थी कि उनकी दिनचर्या सूर्योदय से प्रारम्भ होती थी और सूर्यास्त में सिमट जाती थी। धन्य है वह घर, जिसके चौके की सांकल सूरज खोलता है और सूरज ही बन्द करता है। सच्चे अर्थों में जैनधर्म परिपूर्ण रूप में वहीं पलता है। एक समय ऐसा ही होता था, आज हमने उसे भुला दिया। तभी हमारा सम्मान था। खान-पान की दृष्टि से भी, आचार-विचार और व्यवहार की दृष्टि से भी उस समय ऐसा हुआ करता था, आज हमने उसे भुलाना शुरू कर दिया।

क्या कहते हैं जैनेतर ग्रन्थ

मैं आपसे कह रहा था कि दिन में भोजन लेने से हम हिंसा से भी बचते हैं और वह हमारे स्वास्थ्य के भी अनुकूल होता है। आजकल बड़े-बड़े योग के प्रवर्तक भी यह कहने लगे हैं कि आप भोजन सूर्यास्त से पूर्व लीजिए। क्यों? कमल और सूर्य का कैसा सम्बन्ध होता है? सूर्यास्त होते ही कमल संकुचित हो जाता है। सूर्य ऊर्जा का बहुत बड़ा स्रोत है। जब तक सूर्य की ऊर्जा भूमण्डल में होती है हमारे शरीर की ऊर्जा भी बहुत तेजी से सक्रिय होती है। जैसे ही सूर्यास्त होता है, वैसे ही हमारे शरीर का पाचनतन्त्र संकुचित होने लगता है। वैसी स्थिति में ठीक ढंग से पाचन भी नहीं होता।

हम चाहें तो उसको अपना सकते हैं, निभा सकते हैं, और यह बात जैन परम्परा में तो मान्य रही ही है, वैदिक और पौराणिक प्रसंगों में भी ऐसा ही देखने को मिलता है। महाभारत में मुझे तीन श्लोक पढ़ने को मिले। पढ़कर बड़ा आश्चर्य हुआ। जैनाचार्यों ने तो रात्रि भोजन को बड़ा निन्द्य बताया है, पर इतना नहीं कहा कि नरक का द्वार है। पर महाभारत में एक श्लोक आता है, उसमें लिखा है-

नरकद्वाराणि चत्वारि प्रथमं रात्रिभोजनम् ।

परस्त्रीगमनं चैव संधानानन्तकायिके ॥

ये रात्रौ सर्वदाहारं परिज्यन्ति स्वमेधसा ।

तेषां पक्षोपवासस्य फलं मासेन जायते ॥

नोदकमपि पातव्यं रात्रौ यत्र युधिष्ठिर ! ।

तपस्वीनां विशेषेण गृहीणां च विवेकिना ॥

वे कहते हैं नरक के चार दरवाजे हैं, उनमें पहला रात्रि भोजन है। यानि जो रात्रि में खाता है वह नरक जाने का पासपोर्ट तैयार करवाता है या अपनी तैयारी कर रहा है। दूसरा द्वार उन्होंने परस्त्री लम्पटता कहा। तीसरा अचार-मुरब्बे का सेवन कहा और चौथा अनन्तकायिक वस्तुओं का भक्षण कहा। यह महाभारत का उल्लेख है।

ये जैनदर्शन से बहुत मिलता-जुलता है। आगे कहते हैं कि रात्रि में तो तपस्वियों और विवेकी गृहस्थों को जल भी नहीं पीना चाहिए। जो रात्रि में चारों प्रकार के आहार का त्याग कर देते हैं उन्हें एक माह में पक्षभर के उपवास का फल मिलता है।

मार्कण्डेय ऋषि ने अपने मार्कण्डेय पुराण में तो और आगे की बात कही है। वे लिखते हैं -

अस्तंगते दिवानाथे आपो रुधिरमुच्यते ।

अन्नं मांससमं प्रोक्तं मार्कण्डेयमहर्षिणा ॥

सूर्य के अस्त हो जाने के बाद जल रक्त और अन्न मांस के समान हो जाता है। ऐसा मार्कण्डेय ऋषि का कहना है।

यह तो मैंने आपको सोचने के लिये कहा कि आप विचार कीजिए कि हम कर क्या रहे हैं? रात्रि में भोजन करना भोजन के प्रति तीव्र आसक्ति का प्रतीक है। और आसक्ति हमारे कषायभावों का पोषण करने वाली है। हम अपनी कषायों को कम करें। यह हमारे सम्यग्दर्शन की भूमिका को भी खण्डित करने वाली है। तीव्र कषाय की स्थिति में, अनन्तानुबन्धी कषाय की स्थिति में सम्यक्त्व पोषित नहीं हो सकता। इसलिये इससे बचने का प्रयास हमारा होना चाहिए।

हम इनसे भी ले सकते सीख

मेरे सम्पर्क में ऐसे बहुत सारे लोग हैं जो जैन नहीं हैं लेकिन रात में भोजन नहीं करते। चारों प्रकार के आहार का त्याग करते हैं।

आज से आठ वर्ष पहले हम जबलपुर में थे। वहाँ हमने मध्यप्रदेश में जैन समाज में रात्रिकालीन विवाह और रात्रिकालीन भोजों को प्रतिबंधित करने का

आह्वान किया। जबलपुर से इसकी शुरुआत की थी। एक बहुत बड़ा समारोह हो रहा था, वहाँ के शहीद स्मारक में। वहाँ पर यह बात रखी। वहाँ अपने प्रवचन में सामूहिक रात्रिभोज एवं रात्रिविवाह से होने वाली हानियों की चर्चा की। कार्यक्रम की समाप्ति के बाद जब हम अपने प्रवास स्थान पर आये लार्डगंज मन्दिर में, तो एक डाक्टर दम्पति मेरे पास आये। उस समय उनकी उम्र होगी चालीस से पैतालीस के बीच। पति-पत्नी दोनों विशेषज्ञ पति एम. डी. मेडीसिन, पत्नी एम. एस. गायनाकोलोजिस्ट थी। डाक्टर द्विवेदी। दोनों ने श्रीफल अर्पित करते हुए हमसे कहा - महाराजश्री, हम दोनों ने छत से आपके प्रवचन सुने थे। तब से आपको परोक्ष रूप से प्रणाम कर रात्रिभोजन का त्याग कर दिया था, महाराज श्री आशीर्वाद दे आज से सायं साढ़े छह के बाद हम जल भी ग्रहण नहीं करेंगे।

पेशे से डाक्टर और जाति से ब्राह्मण, जैनी नहीं। सामने बैठकर प्रवचन सुनने वाले नहीं, छत से। मैंने पूछा - आपका चल जायेगा? बोले - मनुष्य के लिए असंभव क्या है। मैंने कहा - सोच लो। बोले - जिस कार्य में हिंसा है, उस कार्य के परहेज में कोई संकोच नहीं। हमने कहा - आपको आने-जाने में कहीं कोई बाधा तो नहीं होगी? बोले - आना-जाना अपनी जगह है, अपना सिद्धान्त अपनी जगह है। उस समय उन्होंने छोड़ा। सन् 2004 में जब हम दुबारा जबलपुर गये तो वे दोनों फिर मिले। मैंने कहा - आपका नियम चल रहा है? उन्होंने कहा - बखूबी। कोई असुविधा नहीं? बोले - महाराज, लोग हमें संत की तरह देखने लगे हैं। हमें बहुत अधिक सम्मान मिलने लगा है। कहीं कोई आना-जाना होता है तो? बोले - महाराज, कहीं कोई कार्यक्रम में जाना-आना पड़ता है तो हम उनके कार्यक्रम से पन्द्रह मिनट पहले पहुँच जाते हैं। देखते हैं कि तैयारी हो रही होती है। वे कहते हैं कि बैठिये, मात्र पन्द्रह-बीस मिनट की देरी है। तब हम कहते हैं कि हमारा यह लिफाफा लो, और हम पन्द्रह-बीस मिनट में ही आते हैं और चल देते हैं। हमारा व्यवहार भी निभ जाता है और हमारा सिद्धान्त भी पलता रहता है। जहाँ चाह है वहाँ राह है।

2004 में हमने सतना में चातुर्मास किया। वहाँ हमारे सम्पर्क में एक एडवोकेट

आये अतुल दुबे और एक अजय द्विवेदी। अतुल दुबे वहाँ के इन्कमटेक्स के लीडिंग प्रेक्टिसनर और अजय द्विवेदी एयर फोर्स में मेकेनिकल इंजीनियर रहे। इन दोनों ने रात्रि भोजन का त्याग कर दिया। अतुल दुबे बेडमिंटन के खिलाड़ी थे। वहाँ के प्रतिष्ठित लोगों के साथ आठ बजे से क्लब में बेडमिंटन खेला करते थे। रात्रिभोजन त्याग करने के बाद खा-पीकर के तो बेडमिंटन खेला नहीं जा सकता और बेडमिंटन खेलकर हम आते हैं तो खाया नहीं जा सकता। आप सुनकर आश्चर्य करेंगे। उस व्यक्ति ने एक टाइम भोजन करना शुरू कर दिया। शाम को केवल आधा गिलास अनार का जूस पीते हैं, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। बड़े हृष्ट-पुष्ट हैं, बड़ा हल्का महसूस करते हैं आपने आपको। बड़े आनन्दित हैं, मेरे पास हमेशा आते हैं। अभी हजारीबाग के चातुर्मास में दो बार आकर जा चुके और अभी मेरे साथ शिखरजी की पूरी वन्दना भी कर चुके।

आदमी हर ऊँची सोसायटी में रहते हुए भी अपने नियम को निभा सकता है, यदि हमारे मन में निष्ठा हो तो। मैं तो आपसे केवल एक बात पूछना चाहता हूँ कि जो व्यक्ति जन्म से जैन नहीं है, यदि वह व्यक्ति भी इस बात को निभा सकता है तो जो जैन है वह आखिर किस की प्रतीक्षा में है। वे क्यों पीछे हो रहे हैं? पुरुषों के साथ महिलाओं से भी कहना चाहता हूँ कि पुरुषों को कदाचित् बाहर जाना-आना पड़ता है। यद्यपि कहीं भी आओ-जाओ कहीं भी कोई बाधा नहीं आती, यह तो मात्र अपनी निष्ठा की कमजोरी है। मन में आप ठान लो। भारत की संस्कृति में तो सदैव त्याग ही पूजा जाता है। जो त्याग करते हैं, नियम-संयम से रहते हैं, उनको लोग सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। यह बात बिलकुल सही है, साईन्टिफिक है। आप गौरव कीजिए। कहिए - हम विज्ञान के अनुसार चलते हैं, धर्म के अनुसार चलते हैं इनके साथ हम समझौता नहीं करते। तब आपका गौरव बढ़ेगा। तब आप जैनधर्म की प्रभावना में निमित्त बनेंगे। यदि अपने आपको आप सिरेण्डर कर दोगे तो जैन भले ही हो जैनत्व के प्रति आपको गौरव नहीं तो जैनधर्म का गौरव भी आप कभी नहीं बढ़ा सकोगे।

ध्यान रखना, जब तक हमारे आचरण में जैनत्व है तभी तक

जैनत्व है। जिस दिन आचरण से जैनत्व चला जायेगा, उस दिन जैन रहेंगे, जैनधर्म नहीं रह पायेगा। हमें जैनधर्म की परम्परा को आगे बढ़ाने की बात सोचना चाहिए और उसके लिये अपने उसूलों पर दृढ़ रहना चाहिए।

जयपुर में एक डाक्टर अशोक लुहाडिया। नियम-संयम से जीने वाले व बड़े प्रसिद्ध डाक्टर हैं। लाइन्स, रोटरी आदि कई संस्थाओं से जुड़े हुए हैं। उन्होंने एक बार मुझसे कहा - महाराज, कोई भी कार्यक्रम में मुझे जब बुलाया जाता है और यदि खाने का मौका आता है तो मैं स्पष्ट कहता हूँ, कि मैं जैन हूँ, रात में नहीं खाता। जाता अवश्य हूँ। पर खाता कहीं नहीं हूँ। यदि आजू-बाजू में कोई जैनी खाता दिखता है तो मैं थोड़ा जोर से कहता हूँ कि मैं जैनी हूँ और रात को नहीं खाता।

उन्होंने एक अनुभव सुनाया, एक किसी कार्यक्रम में वे गये हुए थे। रात्रिभोज का कार्यक्रम चल रहा था। जब उनसे कहा गया तो उन्होंने अपनी आदत के मुताबिक कहा - मैं जैन हूँ और रात में नहीं खाता। उस कार्यक्रम में एक सरदारजी भी थे, उन्हें मजाक सूझी। उन्होंने कहा - अरे जैन साहब, कहाँ की बात करते हैं! ठीक है बारहवीं शताब्दी में लाईट नहीं रही होगी, सो लोग रात में नहीं खाते होंगे। अब तो लाईट की अच्छी व्यवस्था है, अब रात में खाने में क्या दिक्कत है? डाक्टर साहब ने तुरन्त पलट कर कहा - ठीक कहते हो सरदार जी, नहीं रहे होंगे सोलहवीं शताब्दी में कोई सैलून और नाई, अब तो बड़े-बड़े सैलून हैं, आप अपनी दाड़ी क्यों नहीं कटवा लेते? सरदार जी अपना-सा मुंह लेकर रह गये।

बन्धुओं, उन्हें समझ में आ गया कि किसी के धार्मिक नियमों का मजाक उड़ाने का परिणाम क्या होता है। बाद में उन्होंने सरदारजी को समझाया कि रात्रिभोजन क्यों नहीं करना चाहिए। सरदारजी ने समझकर अपने कहे पर खेद व्यक्त किया।

सबसे बड़ी बात हमारे हृदय में यह बैठना चाहिए कि यदि हम कोई नियम

पाल रहे हैं तो उसमें कोई हीनता का भाव नहीं आना चाहिए, गौरव का भाव होना चाहिए। यह मेरा कर्तव्य है, यह मुझे पालना है। जैनी नहीं पालेंगे तो कौन पालेंगे। यह अगर सोच लो तो आपको कोई दिक्कत नहीं होगी।

घर में त्याग बाहर की छूट : आचरण की पहली झूठ

पहली बात तो आप लोगों से मैं जो कहना चाहता हूँ, कि वैयक्तिक स्तर पर आप लोग रात्रि भोजन को छोड़ें। जिनको रोज आफिस जाना है, मैं उनसे कहना चाहता हूँ कि आप दस-ग्यारह बजे आफिस जाते हो। आफिस तो आपका आखिरी तक नहीं छूटेगा, फिर रात्रिभोजन से कब बचोगे। एक रास्ता मैं बताता हूँ आपको। आप जो आफिस ग्यारह बजे जाते हो, तो घर से खाना खाकर जाओ। जो दोपहर को भोजन लेते हो, उसे खिसका कर पाँच बजे कर दो और अपने साथ दो बजे की बजाय पाँच बजे के लिये टिफिन ले जाओ। दस-ग्यारह बजे भोजन करोगे तो पाँच बजे आपको बहुत तेज भूख लगेगी। दोपहर को यदि आपको लेना है तो हल्का-सा फल ले लो। और यदि रात्रि में ज्यादा आकुलता हो तो, पहले हम लोगों को याद करो। जब हम लोग एक टाइम खा करके पूरी जिंदगी गुजार सकते हैं तो क्या आप लोग दिन में खाकर नहीं निकाल सकते?

मेरा और आपका शरीर कोई अलग-अलग नहीं है। दोनों का मटेरियल एक ही है, दोनों हाड-मांस के बने हैं। आपकी धारणा के ऊपर है, फिर भी यदि कुछ कठिनाई है तो यह तय कर लो कि हम फल खाकर अपना काम चला लेंगे। सारा काम अच्छे से चल सकता है, स्वास्थ्य भी अच्छा होगा। मैं तो आपसे कहना चाहता हूँ कि जो अभी रात्रिभोजन करते हैं, वे महीने भर के लिये प्रेक्टिकल करके देख लें। अन्दर मन से करें। यदि आपको अच्छा लगे तो उसे कन्टीन्यू कर लेना। आपको कोई कठिनाई नहीं होगी। मात्र सुबह नाश्ता लेने की आदत छोड़ना होगी।

तेज भूख में जब आप भोजन करेंगे तो पाचन भी अच्छा होगा। किसी के यहाँ आना-जाना है तो जाइये, पर कह दीजिए कि मैं रात में तो खाता नहीं। जाइये जरूर। बहुत सारी चीजें होती हैं, आप एक ग्लास पानी पीकर के चले आइये।

मेरा मानना है कि खाने-पीने से व्यवहार नहीं निभता, व्यवहार तो हमारे

व्यक्तित्व पर जुड़ा रहता है। यदि हमारे अन्दर सरलता है, सहजता है, मिलनसारता है तो हमारा सबसे व्यवहार मिलेगा। मात्र टिपटाप बनाये हैं और हमारे अन्दर यदि मिलनसारता नहीं हो, किसी भी सीधे मुंह बात करना न सीधे तो हमारा व्यवहार किससे निभेगा ? कौन हमारे सम्पर्क में आयेगा। यह बात महत्त्वपूर्ण है।

हम लोग कई बातें व्यवहार के लिये छोड़ देते हैं। हमारे सम्पर्की अजैन लोग भी हैं, उनसे हमारे व्यवहार क्या होंगे ? हमने केवल एक ही बात कही, कि हमें एक ही बिन्दु पर विचार करना है कि हमारे लिये सम्पर्क महत्त्वपूर्ण हैं या सिद्धान्त। यदि आप अपने सिद्धान्तों को प्रमुखता देगे तो सम्पर्क भी निभेगे और काम भी बनेगा। यदि सम्पर्कों को महत्त्व देगे तो सिद्धान्तों की बलि चढ़े बिना नहीं रहेगी। मैं तो यह कहता हूँ कि कोई भी क्रिया जब व्यक्तिगत रूप में होती है तो मजबूरी होती है। लेकिन जब वही सामूहिक रूप से होती है तो वह परम्परा बन जाती है। मजबूरी को आसानी से दूर किया जा सकता है, लेकिन परम्परा को दूर करना इतना आसान नहीं होता। आज इसी परम्परा का परिणाम यह हो गया है कि जब मैं महिलाओं से चौके में रात्रिभोजन की बात करता हूँ तो वे कहती हैं कि घर का त्याग, बाहर की छूट। मतलब घर में पाप है, बाहर नहीं है। ऐसा है क्या ?

श्री डी कल्चर : जहरीला मिक्सचर

एक तो होटलों का कल्चर डवलप हो गया है और दूसरा शादी-विवाह आदि समारोहों में सब जगह रात्रि में ही जाना पसंद करते हैं। जहाँ दिन में उपलब्ध है वहाँ भी रात में जाना पसंद करते हैं। यह शोभनीय नहीं है।

जैनियों को अपने यहाँ के भोज को दिन में ही सम्पन्न करना चाहिए। इससे आप जैनधर्म की प्रभावना में सहायक होंगे। आपका भी गौरव बढ़ेगा और जैनधर्म का भी गौरव बढ़ेगा। देश में कई स्थानों पर आज भी बखूबी दिन में ही भोज आदि के कार्यक्रम सम्पन्न होते हैं।

मध्यप्रदेश में तो कई सालों से चल रहा है। झारखंड और बिहार में अभी चालू हुआ है। राँची और हजारीबाग में तो अभी तक ऐसी कोई निगेटिव बात सामने नहीं आयी। हम चलाना चाहें तो चला सकते हैं।

लोग कहते हैं कि हमारे जो गैर-जैन परिचित हैं, मित्र हैं, उनको कैसे बुलायें ? उनको भी बुलाइये। सुबह बुला लीजिए, शाम को नहीं। महाराज, बहुत व्यस्तता है, एक छोर से दूसरे छोर तक आने-जाने में। यदि ऐसी परेशानी है तो केवल छुट्टी के दिन समारोह करिये, बाकी दिन मत कीजिए। कोई न कोई रास्ता आप लोगों को निकालना ही चाहिए। यदि हम यह नहीं कर पायेगे तो आगे आने वाले दिनों में हमारी पहचान खो जायेगी। क्योंकि रात्रिभोज के साथ अन्य अनेक बीमारियाँ जुड़ने लगी हैं।

श्री डी की संस्कृति है - डिनर, ड्रिंक्स और डांस। हालाँकि मुझे यह सुनकर प्रसन्नता है, यदि इसमें सच्चाई है तो। कलकत्ता के जैनियों के शादी-विवाहों में अभी शराब और जुए का चलन नहीं हुआ है। बहुत अच्छी बात है, यदि हकीकत है तो बहुत सराहनीय है। लेकिन मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ कि थोड़ी सावधानी रखो, अभी चलन हुआ नहीं है, पर यदि प्रमादी बनोगे तो चलन होने में देर नहीं लगेगी। इसलिये इस पर रोक लगाना चाहिए। यदि समय रहते इस पर विचार नहीं करेगे तो इसके परिणाम बहुत घातक होंगे। इसलिये इन बिन्दुओं पर समाज को विचार करना बहुत जरूरी है। कल थोड़े से लोगों के मध्य चर्चा हुई थी। मैंने यही कहा - अलग-अलग संस्थाओं के लोग, अलग-अलग कालोनियों के लोग, अलग-अलग मन्दिरों से जुड़े हुए लोग इस पर बैठकर विचार करें। इसके परिणाम बहुत अच्छे आयेगे। यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि होगी। हमने सुना तो बहुत कुछ है पर अपनाया कितना ?

जिस चीज को हम बुरा मानते हैं, उसे ही हम दूसरों से कराये, यह कहाँ तक उचित है ? ऐसे अवसरों पर तो हमें संदेश देना चाहिए कि हम जैन हैं और हम अपने नियमों के पालन में बहुत दृढ़ रहते हैं।

आप देखिए, आपके बीच एक कम्युनिटी ऐसी भी है, जो अपने धार्मिक नियमों के पालन में कैसी दृढ़ रहती है। जब उनका नमाज पढ़ने का समय होता है तो कितना ही बड़ा अधिकारी क्यों न हो, अपनी टेबिल से उठकर वह नमाज पढ़ने बैठ जाता है। यह किसने सिखाया उनको ? यह मेरा नियम है और नियम का

पालन मुझे करना है। यदि आप चाहोगे तो सब कुछ निभाया जा सकता है। और यदि आप भुला दोगे तो सारे नियम टूट जायेंगे।

गर्व करें अपने पूर्वजों पर

बन्धुओं, यह परम्परा यहाँ तक कैसे आयी है यह आपको मालूम है? कितना बलिदान करना पड़ा है हमारे मुनियों और आचार्यों को। हमारे श्रावकों को। कितनी विषमता स्थितियों से गुजरना पड़ा है। फिर भी इतने बड़े प्रहारों के बाद भी वे अपनी परम्परा को हमारे लिये दे पाये हैं। उनके प्रति हम सबको बहुत बहुमान व्यक्त करना चाहिए। यह हमारे पूर्वजों की बहुत बड़ी देन है। तमाम विषमताओं के बावजूद भी वे इस परम्परा को यहाँ तक ला पाये हैं। मालूम है जैन संस्कृति को कैसे त्रासद दौर से गुजरना पड़ा।

तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी की घटना है। तमिलनाडु में एक महेन्द्रवर्मन नाम का राजा हुआ। वह जाति और कर्म से नीच था। उसने किसी जैन कन्या से विवाह करने का प्रस्ताव रखा। जैन समाज में खलबली मच गयी। ऐसे जाति और कर्म से नीच व्यक्ति को अपनी कन्या कैसे दे दें। समाज के सामने बहुत बड़ी समस्या। लेकिन वह युग था जब लोग बड़ी से बड़ी चुनौतियों का सामना करने को तैयार रहते थे। परन्तु अपने सिद्धान्तों के साथ कोई समझौता नहीं करते थे। समाज के लोगों ने बैठक की। निर्णय को सुनकर आप चौकेंगे। बड़ा ही दुःसाहसिक निर्णय था। मात्र सिद्धान्त की रक्षा करने के लिये हर बात का सामना करने वे तैयार हो गये। इतिहास में घटित यह सत्य घटना है।

समाज के पाँच पंच गये और राजा से कहा - यदि आप विवाह करना चाहते हैं तो ठीक है। लेकिन हम समारोहपूर्वक अपनी बेटी आपको नहीं दे सकते। ऐसा करिये, बस्ती से बाहर एक उपवन है, उसमें एक छोटी-सी कुटिया है। उस कुटिया में एक बाला मिल जायेगी और आप उसके साथ विवाह कर लीजिए। चूँकि जैन भी वहाँ बहुत प्रभावशाली स्थिति में थे। राजा ने उनकी बात मान ली। राजा अपने रथ पर बैठकर वहाँ पहुँचा। उसने देखा एक भी व्यक्ति उसके स्वागत के लिये उपस्थित नहीं था। राजा अन्दर गया। कुटिया सजी हुई थी। कुटिया के अन्दर

गया तो एकदम आग-बबूला हो गया। क्योंकि वहाँ कोई लड़की नहीं, एक कुतिया बंधी हुई थी। उसके गले में एक चिट्ठी टंगी हुई थी। जिसमें लिखा था कि कोई भी जैन बाला आपसे शादी करने के लिए तैयार नहीं है। इसलिए आप मुझसे ही संतुष्ट हो जाओ। सोच सकते हैं क्या प्रतिक्रिया हो सकती है इसकी?

राजा का इतना बड़ा अपमान कोई कर दे, कोई साधारण घटना है क्या? लेकिन यह हुआ। राजा आग-बबूला हो गया। तत्क्षण जैनधर्म को राजद्रोही घोषित कर दिया गया। सात हजार मुनियों को फाँसी पर टंगवा दिया गया, एक इतने से कृत्य के पीछे। हमारे सारे मन्दिर ध्वस्त हो गये। रात्रि भोजन का त्याग और पानी छानने को जुर्म घोषित कर दिया गया। उसे कानूनन अपराध घोषित कर दिया गया। उसके बाद बहुत से जैनी अजैन हो गये। वे शैव और लिंगायत सम्प्रदाय के अनुयायी हो गये। यह घटना जैन संस्कृति के लिए बड़ी काली घटना सिद्ध हुई। इसके कुछ वर्षों बाद एक जैन श्रावक, जो अपने नियमों में दृढ़ था, तालाब में पानी छान रहा था। राजकर्मियों ने उसे पकड़ लिया और राजा के समक्ष उपस्थित किया गया। इसने कायदे का उल्लंघन किया है, यह तालाब में पानी छान रहा था। अतः यह जैन है। चूँकि उसी दिन राजा को पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई थी, तो पुत्ररत्न की खुशी में राजा ने उसे मुक्त कर दिया। इतना सुनना था कि उसे आत्मगौरव जाग उठा। मुझे धिक्कार है कि मैं अपना धर्म भी छिप-छिपकर कर रहा हूँ। धर्म तो स्वतन्त्र रूप से पालन करने की चीज है, इसमें छिपने की बात क्या? वे सीधे तमिलनाडु से कर्नाटक श्रवणबेलगोल चले गये। वहाँ होयसल राज्य था, जो जैनधर्म का अनुयायी था। वहाँ उन्हें संरक्षण मिला। उन्होंने वहाँ रहकर अध्ययन किया। अध्ययन करके वे मुनि बने। मुनि रूप में उनका नाम वीरसेन हुआ। मुनि बनकर वे पुनः तमिलनाडु आये और नियम लिया कि जो जैन व्यक्ति अजैन बन गये हैं, उनमें से सौ व्यक्तियों को प्रतिदिन पुनः जैन बनाकर आहार ग्रहण करूँगा। निन्यानवे होने तक वे आहार नहीं किया करते थे। सौ होने पर ही उन्होंने आहार लिये। उनका ही उपकार है कि तमिलनाडु में जो नयनार जाति के जैनी हैं, जो तीन सौ गाँवों में जैनी बचे हैं। एक जमाने में तमिलनाडु में जैनियों की संख्या सर्वाधिक थी।

आज भी जो तमिल साहित्य है वह जैन साहित्य से ही भरा है वह सब वीरसेन स्वामी के पुरुषार्थ का ही फल है। यदि जैन साहित्य को हटा दें तो तमिल में कोई महत्त्वपूर्ण साहित्य ही न बचे। सम्पूर्ण तमिल साहित्य एक तरफ और जैन तमिल साहित्य एक तरफ। अस्सी प्रतिशत तमिल साहित्य जैनाचार्यों के द्वारा लिखा गया है। वह उन आचार्य की कृपा थी, जिन्होंने पथभ्रष्ट हजारों को पुनः वापिस जैन बना दिया।

मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि उस विपरीत परिस्थिति में जैनों ने अपने कायदे को निभाया। और आज आप क्या कर रहे हैं, थोड़ा विचारिये! आप लोग कहते हैं कि महाराज, क्या करें? चलता नहीं। कैसे नहीं चलता? आप उन पूर्वजों को याद करो, जो आपके देश से व्यापार करने के लिये जाते थे। उस समय आज जैसी व्यवस्थाएँ तो थी नहीं। ऊँट या घोड़ों पर जाकर व्यापार करना पड़ता था, तब पैसा कमाया जाता था। जीविका तो उनके साथ भी जुड़ी थी। आज से ज्यादा कठिन थी उनकी जीविका। हफ्तों घर से बाहर रहना पड़ता था। घोड़ों पर सामान लादकर जाना पड़ता था। उन दिनों वे रात का खाना तो दूर, बाजार का खाना भी पसंद नहीं करते थे। अपने हाथ से बाटियाँ बनाकर और सत्तू सानकर अपना काम चला लेते थे।

व्यापार उन्होंने भी किया लेकिन उन्होंने अपने उसूलों को बचाये रखा। पैसा आज आप भी कमा रहे हो। आज तो व्यापार कितना आसान हो गया है। सब प्रकार के संसाधन हैं। घर से आफिस यदि दूर भी है तो एक घण्टे बाद भी अपना भोजन मंगवा सकते हो, इतना स्टॉफ है। चेम्बर अलग है। आपके भोजन में कोई व्यवधान भी नहीं हो सकता। सब कुछ कर सकते हो, करना चाहें तो। करने वाले के लिये सौ रास्ते हैं और नहीं करने वाले के लिये हजार बहाने। अब यह आपके ऊपर है कि आप क्या चाहते हैं।

बस एक ज़रूरत दृढ़ता की

बन्धुओं, मैं तो यह चाहता हूँ कि साढ़े चार माह से ऊपर मुझे हो गया, आप लोगों ने मुझे खूब जी भर के सुन लिया। लाभ भी लिया है। आज भी आपकी

उत्कण्ठा बनी हुई है। लेकिन उसका स्थायी असर तो हो। मैं यहाँ से जाऊँ, कोई व्यक्ति आये और देखे कि यहाँ एक भी व्यक्ति रात में खाने वाला नहीं है। तब तो लोगों को समझ में आयेगा कि महाराज के सान्निध्य का प्रकट असर यहाँ पर दिख रहा है।

यद्यपि मैं यह मानता हूँ कि केवल रात्रि भोजन छोड़ देने से अपने जीवन की बुराईयाँ नहीं जायेगी। लेकिन बन्धुओं, अन्य बुराईयाँ तो हमारी वैयक्तिक हैं, उसे हम दूर करें। पर जो यह सामूहिक बुराई है उसे तो दूर करना ही चाहिए। जो देखने में आती, जिससे हमारी पहचान खण्डित होती है। उसको दूर करने के कारगर प्रयत्न यहाँ पर होने चाहिए। समाज के जवाबदार व्यक्तियों का यह दायित्व होता है। बहुत सारे प्रश्न उठाये जा रहे थे, कि इसमें ये समस्यायें हैं, वे समस्यायें हैं। जब हम समस्यायें दूढ़ेंगे तो समस्यायें ही समस्यायें आयेगी। सिद्धान्ततः किसी चीज को स्वीकार्य कर लें कि इसका क्रियान्वयन हमें करना है और कैसे करना है तो सारे रास्ते आपने आप निकल आयेगे। मैं तो आप लोगों से यही कहना चाहता हूँ कि हर नई पहल पर समस्यायें आती हैं। समस्याओं को सामने नहीं लाइये, हमारी तो कुशलता इसमें है कि हम उन समस्याओं का निदान खोज निकालें। उसका हल कैसे करें। आज तक हम जैसे चले आ रहे हैं, उसको बदलने में थोड़ी बहुत कठिनाई तो होगी ही, लेकिन असंभव नहीं है। यदि हम सोच लेंगे तो सारा काम अपने आप हो जायेगा।

जब हम लोगों ने इस बात की शुरुआत की तो व्यक्ति-व्यक्ति से फार्म भराये गये। बाद में तो सामूहिक संकल्प दिलाया जाने लगा। जबलपुर में यह नियम बनवाकर जबलपुर के उपनगर पाटन में गये। वहाँ पर तीन दिन का प्रवास था। वहाँ भी प्रवचन में बात आयी, समाज ने तत्काल नियम बना दिया। एक सज्जन ने फार्म भरा, तो एक मित्र ने कहा - तुम फार्म भर रहे हो, अपने बेटे से तो पूछ लो, कुछ दिन बाद ही तुम्हारे बेटे की शादी है। उन्होंने जिस दृढ़ता से जवाब दिया वह काबिल-ए-तारीफ है। उन्होंने कहा - मैंने फार्म भर दिया। अब यदि मेरा बेटा भी रात्रि की शादी करेगा तो मैं अपने बेटे की भी शादी में सम्मिलित नहीं

होऊंगा। क्योंकि मैं अपने सिद्धान्त से समझौता नहीं करना चाहता। हालांकि ऐसी नौबत बहुत कम आती है। जब सामूहिक रूप से नियम बन जाते हैं तो चलते हैं।

एक प्रश्न यह जरूर आता है कि कोई भी नियम बनते हैं तो टूट जरूर जाते हैं। कुछ लोग तो यह भी कहते हैं कि नियम तो टूटने के लिये ही बनते हैं। मेरा एक अनुभव है, अन्य नियमों और इस नियम में। जितने भी नियम समाज में बने हैं वे टूटे हैं। लेकिन जहाँ पर रात्रिभोज आदि का नियम बना है वहाँ कोई टूटा नहीं है। यद्यपि दो-चार प्रतिशत लोग, जिनको कि समाज की कोई जरूरत नहीं है या अपने को समाज से ऊपर मानते हैं, वे ही यह करते हैं। लेकिन दस परसेंट को नहीं देखते, हम तो नब्बे परसेंट को देखते हैं। वहाँ तो दिन में विवाह हो रहे हैं। वहाँ किसी धनी-मानी व्यक्ति ने इन नियमों का उल्लंघन किया है तो दूसरे लोगों ने उनका अनुकरण नहीं किया। अपितु नियम का उल्लंघन करने वालों की किरकिरी ही हुई है। उनके कार्यक्रमों में अपेक्षाकृत कम लोग गये हैं। बाद में उनको लगता भी है कि हमने गलत किया। इसलिये यह नियम टूट नहीं सकता। यदि एक साथ समारोहपूर्वक समाज को संकल्पित कर दिया जायेगा तो नियम आपने आप बनेंगे। रही बात व्यस्तता, आने-जाने की है तो उसका रास्ता निकालो। हम तो यह कहना चाहते हैं कि यदि आपको व्यस्तता है तो सबसे ज्यादा संडे को प्रफर करो। ऐसे भी अधिकांश लोग संडे को महत्त्व देने लगे हैं। हमारे सारे मुहूर्त हमारी सुविधा से जुटने लगे हैं। तो इसमें भी कोई दिक्कत नहीं।

आइ नहीं लें ज्योतिष की

आपको एक बात बताऊँ। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार मुहूर्त देखना चाहिए। लेकिन जब मैंने मुहूर्तशास्त्र को पढ़ा, उसमें जो विश्लेषण आया - एक पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के मुहूर्त में एक सौ आठ बातें सोची/शोधी जाती हैं। साल में कोई एकाध ही ऐसा मुहूर्त होता है। फिर हमने कहा - ऐसा मुहूर्त तो होता नहीं, तो क्या करें? तो उस मुहूर्त चिन्तामणि ग्रन्थ में लिखा - इसमें जितने ज्यादा हों उतने मिला लो। ज्यादा का भी मिलान न हो तो क्या करें? फिर लिखा है - ज्यादा जरूरी काम को लग्नबल निकालकर कर सकते हैं। लग्नबल भी यदि ठीक नहीं

हो रहा है तो क्या करें? तब नवमांश निकाल लो। यदि नवमांश भी ठीक नहीं हो और कार्य करना जरूरी हो तो क्या करें? तो मनोबल से कार्य करो। मैंने कहा - यदि सारा खेल मनोबल का है तो मुहूर्त का रामायण काहे को सुनाया?

ज्योतिष बहुत फ्रैक्च्युल है। उसमें बहुत लोच है। इस बात का ध्यान रखिए। इसलिये लकीर के फकीर मत बनिये। दूसरी बात, जो रात्रि में फेरे होते हैं धार्मिक दृष्टि से अच्छी बात नहीं है। विनायक यन्त्र की पूजा होती है, अष्टद्रव्य चढ़ाते हैं, जैन परम्परा के अनुसार पूजा दिन में ही सम्पादित की जाती है, रात में नहीं। एक पवित्र संस्कार की शुरूआत आप रात में करेंगे तो उसके परिणाम अच्छे नहीं माने जायेंगे। यह ब्राह्मण परम्परा की देन है कि रात्रि में फेरे पड़ने लगे। आपको दिन में मुहूर्त अच्छा मिलेगा। दिन के भी चौघडिया अच्छे होते हैं। दिन के भी लग्नबल अच्छे होते हैं। उन लग्नबल का उपयोग करके हम सारा काम कर सकते हैं। छह लग्न दिन में होते हैं और छह लग्न रात में होते हैं। सारे काम हमारे चल सकते हैं यदि हम चलाना चाहें तो।

मैंने इस प्रकरण पर अध्ययन किया। सारे महापुरुषों के विवाह प्रकरण को देखा। त्रेसठ शलाका पुरुषों में एक भी ऐसा नहीं कि जिसकी शादी या फेरे रात में हुए हों। सबके दिन में हुए। रात में होना तो हमारी परम्परा में ही नहीं है। फेरे दिन में करायें, शादी दिन में करायें, भोज दिन में करायें। न केवल शादी-विवाह के भोज अपितु अन्य प्रकार के भी भोज दिन में करायें।

मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि गृहप्रवेश आप लोग कराते हैं तो मुहूर्त से ही कराते हैं? उसमें वीक-एण्ड तो नहीं देखते। दिन में सम्पादित होता है कि नहीं होता? रात में तो नहीं करते। पहल करेंगे तो परिणाम आयेगे। यह सब आपके ऊपर है। मेरा काम तो केवल उपदेश देने का है। मैं तो यह कहना चाहता हूँ कि अभी एक-दो दिन में छुट्टियाँ भी पड़ रही हैं, बैठिये, इस पर विचार कीजिए। एक बार यह मन बना करके विचार कीजिए कि हमें यह निर्णय लेना है। सारा काम हो जायेगा। एक बात बताऊँ, और लोगों का तो यह कहना है कि महाराज, यदि चौरंगी में हो गया तो सभी जगह हो गया। मैं कहता हूँ कलकत्ता में हो गया तो सब जगह हो गया। अभी हम चौरंगी में ही बैठे हैं, विचार कीजिए और इसके विषय में

खुली चर्चा कीजिए। जो भी समस्याएं आयें, उनका हल हो सकता है। कुछ चुनौतियाँ भी हमारे सामने आयेंगी। उनका प्रारम्भिक रूप में सामना करना ही होगा। बिना कठिनाइयों को सहारे आगे बढ़ नहीं सकते। रास्ता हमें तय करना है तो जो कँटीली झाड़ियाँ हैं उनको हटाते हुए चलना पड़ेगा। एकदम साफ बने बनाये रास्ते पर तो सभी चल लेते हैं। नये रास्ते को बनाना है तो कँटीली झाड़ियों को अलग करना पड़ेगा। उसके लिये अपने आपको तैयार रखें। पैर में सुरक्षा का प्रबन्ध रखें। ताकि चलते-चलते वे काँटे हमें न चुभें और रास्ता भी बन जाये। यह प्रयास हमारा होना चाहिए। मुझे विश्वास है इस बात पर आप गम्भीरता से विचार करेंगे। वैयक्तिक स्तर पर रात्रिभोजन का त्याग करें और सामूहिक स्तर पर रोक लगाने की सोचें, जिससे कि हमारी परम्परा ठीक ढंग से चल सके। इस बीमारी से समाज को बचाया जा सके।

जहाँ तक मेरा मानना है कि समाज के मध्यमवर्ग के बहुसंख्यक लोगों की यह भावना है कि इस नियम का क्रियान्वयन हो जाये तो बहुत अच्छा है। इस भाव को मैंने बड़ा बाजार में बहुत अच्छे से महसूस किया था। पर मैं यह जानता हूँ कि एक वर्ग से कोई नियम नहीं चल सकता। नियम तो हमें सबको जोड़कर ही करना चाहिए। इसलिये इस प्रकरण को लम्बित रखा गया था। सोचा था, जब चौरंगी चलेगे, तब वहीं से बात शुरू की जायेगी। महावीर जयन्ती के कार्यक्रम के कारण सारा समय लग गया। तब लोगों को डिस्टर्ब करना भी उचित नहीं समझा। अब समय है एक कारगर उपलब्धि के रूप में आप कुछ कीजिए।

ध्यान रखना, इस प्रवास से मुझे तभी संतोष होगा, जबकि इस तरह की कोई रचनात्मक बात सामने लायेंगे। इसका बहुत सुन्दर संदेश जायेगा। अन्यथा यही मानूँगा कि केवल जय-जयकारों में ही सारे दिन बीते हैं। उपलब्धि के नाम पर हमारे हाथ में अभी जीरो ही रहा है। अब इस जीरो पर अंक आपको खड़ा करना है, जो आपकी आस्था का प्रमाणपत्र माना जायेगा। मैं देखना चाहता हूँ कि इतने दिनों में आपने मेरी बात को कितना महत्त्व दिया। आप उस पर कितनी तेजी से चलने के लिये तैयार हैं। फैसला आप सबको करना है। मैं अपनी वाणी को यहीं विराम दे रहा हूँ।

मार्ग महावीरत्व का

महावीर तुम्हारे अन्दर है

एसो पंचणमोयारो सब्बपावप्पणासणो । मंगलाणं च सब्बेसिं पढमं होइ मंगलं ॥

एक नदी के किनारे सुन्दर सी चट्टान थी। लोग उस पर बैठते, लहरों के साथ अठखेलियाँ खेला करते और युवा उस पर बैठकर पिकनिक मनाया करते थे। धोबी उसी पत्थर पर बैठकर कपड़ा धोया करता था। रोज का यही क्रम था। एक दिन किसी शिल्पी की नजर उस चट्टान पर पड़ गयी। उस चट्टान को उसने सलीके से निकाला, अपने वर्कशाँप में ले गया। उसे सुन्दर आकार देना शुरू किया और तराश-तराश कर भगवान् का रूप दे दिया। हर पाषाण से भगवान् अभिव्यक्त हो सकता है, बशर्ते उसे सलीके से तराशा जाये।

भगवान् महावीर की जयन्ती के सन्दर्भ में हम सब बातचीत कर रहे हैं। हममें और महावीर में कोई मौलिक अन्तर नहीं है। अन्तर तो इतना है कि हम पाषाण रह गये और वे भगवान् हो गये। हर पाषाण के अन्दर भगवान् छिपा होता है। हम कहते हैं कि शिल्पी पाषाण से भगवान् बनाता है। लेकिन वास्तविकता यह है कि शिल्पी बनाता कुछ नहीं है। शिल्पी केवल इतना करता है कि जो कुछ अनावश्यक है उसे काट-छाटकर अलग कर देता है। जिससे उस पाषाण का जो भव्य स्वरूप है वह स्वयमेव प्रकट हो उठता है और उसकी अभिव्यक्ति का नाम भगवत्ता की उपलब्धि है। हम सबके भीतर वही भगवत्ता है।

भगवान् महावीर आये और चले गये, लेकिन हम सबके लिये यह कह गये कि तुम्हारे भीतर भी वही भगवत्ता है, जिसकी तलाश में तुम इधर-उधर भागते हो। वह भगवत्ता कहीं बाहर नहीं, तुम्हारे भीतर ही है। उसे पहचानने की कोशिश करो, उसकी अभिव्यक्ति हो जायेगी। लेकिन तभी होगी जब तुम अपने आपको पहचानोगे और उसमें जो अनावश्यक है, व्यर्थ है उसे अलग करोगे।

भगवान महावीर यूँ ही महावीर नहीं बने। उन्हें महावीर बनने के लिए कई जन्मों में तपना पड़ा। वह इतने तपे कि तपते-तपते तप बन गये। वह इतना चले कि चलते-चलते राह बन गये। हममें और महावीर में तात्त्विकदृष्टि से कोई अन्तर नहीं है। लेकिन वर्तमान स्थिति पर जब विचार करते हैं तो जमीन और आसमान का अंतर दिखता है।

हम अकिंचन हैं, वे महान। हम पामर हैं, वे परमेश्वर। हम पतित हैं, वे पावन। हम कंकर हैं, वे शंकर। भगवान महावीर कहते हैं हर कंकर शंकर हो सकता है। हो सकता क्या? हर कंकर शंकर है, पामर परमेश्वर है, पतित पावन है बशर्ते वह उसे पहचाने और उसकी अभिव्यक्ति के लिये सार्थक प्रयत्न करे। हम सब जो धर्म की साधना करते हैं, आराधना करते हैं उसका मकसद कुल यही है कि हम अपने जीवन के स्वरूप को जानें और आत्मा को विशुद्ध बनाने का प्रयत्न करें। वस्तुतः धर्माचरण आत्मा के निर्मलीकरण का पावन अनुष्ठान है। आत्मा की विशुद्धि की एक प्रक्रिया है। जिसको अपनाकर आत्मा में छायी हुई विकृतियों का शोधन कर सकते हैं और अपने जीवन को परम तत्त्व तक पहुँचाने में समर्थ हो सकते हैं।

उस भगवत्ता की अभिव्यक्ति का ध्येय हम सबका होना चाहिए। उसके लिये हमारी दृष्टि जागृत होना चाहिए। जब तक दृष्टि जागृत नहीं होती, तब तक हमारे भीतर का महावीर प्रकट नहीं हो सकता।

विकारों से लड़ाई

बन्धुओं, दुनिया में वीर तो बहुत मिल जाते हैं, लेकिन महावीर बिरला होता है। **महावीर वे होते हैं जो अपने आपसे लड़ते हैं और अपने विकारों को जीतते हैं। वीर वह होता है जो दूसरों से लड़ता है और दूसरों पर विजय पाता है।** दूसरों को जीतना, दूसरों से लड़ना और दूसरों को हराना बहुत सरल है। अपने आपको जीतना बहुत कठिन है। यह विडम्बना है कि लोग दूसरों से तो जीत जाते हैं लेकिन खुद से हार जाते हैं। हमारी स्थिति आज तक यही रही है, हम दूसरों से जीतते रहे हैं, पर खुद से हारे हैं। अपने ही सामने हम अपने आपको पराभूत किये हैं।

संत कहते हैं - महावीर का मार्ग विजेताओं का मार्ग है। महावीर क्या थे? महावीर जिन थे। जिन किसे कहते हैं? जो जीतता है। किसको जीतता है? दूसरों को? दूसरों को बहुत सहजता से जीता जा सकता है। लेकिन अपने विकारों को बहुत कठिनता से जीता जाता है। जो दूसरों को जीतता है वह वीर हो सकता है। जो स्वयं को जीतता है वही महावीर होता है।

भगवान महावीर कहते हैं - अपने आपको जीतो, आत्मजयी बनो। परजयी नहीं। हमारी आत्मा में बहुत बड़े-बड़े शत्रु बैठे हैं, बाहर के शत्रुओं के प्रति हम फिर भी जागरूक रहते हैं, चौबीसों घण्टे चौकन्ने रहते हैं कि कोई शत्रु हमें हानि न पहुँचा दे। लेकिन अपने भीतर के शत्रुओं का हमें कुछ भान नहीं है।

संत कहते हैं - बाहर के शत्रु हमें जो नुकसान पहुँचाते हैं, जो क्षति पहुँचाते हैं वह तो थोड़ी-मोड़ी क्षति होती है। उस क्षति की भरपायी भी हो सकती है। हमें धन को नुकसान पहुँचा सकते हैं। हमारे स्वास्थ्य को नुकसान पहुँचा सकते हैं। हमारे परिवार को क्षति पहुँचा सकते हैं। हमारी प्रतिष्ठा को क्षति पहुँचा सकते हैं। बाहर के शत्रुओं से जो क्षति होती है उसका सम्बन्ध केवल इहलोक तक सीमित होता है। लेकिन अन्दर के शत्रुओं से जो क्षति होती है उसका सम्बन्ध न केवल इहलोक तक होता है, अपितु जन्म-जन्मान्तरों से जुड़ा होता है।

भगवान महावीर कहते हैं कि अपने भीतर छिपे हुए शत्रुओं को पहचानो। पर मुश्किल तो यह है कि ऐसे तो हम शत्रुओं को देखना भी पसंद नहीं करते, पास बिठाने की बात तो बहुत दूर है। लेकिन भीतर के शत्रुओं को अपने घर में बसा के रखे हैं। न केवल बसा के रखे हैं, अपितु रातदिन उनके लिये रसद की आपूर्ति भी करते रहते हैं। उन्हें खाना-पीना भी दे रहे हैं। उनकी पूरी खातिरदारी कर रहे हैं।

जब तक हम अपने शत्रु को गले लगाते रहेगे, वह शत्रु हमारे घर से बाहर नहीं निकल सकता। बन्धुओं, शत्रु को गले लगाकर मित्र बना लेना तो बहुत अच्छी बात है, पर जिस शत्रु को हम गले लगाये हुये हैं, वही हम पर हमला बोलता है। ये केवल बेबकूफी ही कहलायेगी।

भगवान महावीर कहते हैं - अपने भीतर के विकारों को पहचानो और उनसे युद्ध करने का प्रयास करो। आत्मा से युद्ध करो, दूसरों से नहीं।

आत्मनः युद्धस्व।

पहचानो अपने आपको और अपने भीतर के विकारों को जानो, जो तुम्हारे चित्त की बड़ी-बड़ी दुर्बलतायें हैं, उनसे युद्ध करो।

महाभारत का युद्ध : महावीर की अहिंसा

बन्धुओं, एक बार मुझसे पूछा गया - गीता में श्रीकृष्ण युद्ध की बात करते हैं और महावीर अहिंसा की। इन दोनों में अन्तर क्या है? मैंने कहा - यदि गहराई से समझो और गीता के युद्ध को आन्तरिक युद्ध से जोड़कर चलो तो महावीर की अहिंसा और गीता के युद्ध में कोई अन्तर नहीं है।

मेरी दृष्टि में गीता में जिस युद्ध का आह्वान है, वह बाहर का नहीं है। वह भीतर का युद्ध है। बाहर का युद्ध तो कई बार हो गया। उसे जब हम एक प्रतीक के रूप में लेकर चलते हैं तब हमें वास्तविकता का पता लगता है। वस्तुतः यह वृत्तियों का युद्ध है, बाहर का युद्ध नहीं है। बाहर के युद्ध को तो बहुत आसानी से जीता जा सकता है। वृत्तियों के युद्ध को बहुत कठिनता से जीता जाता है। और इसकी शुरुआत गीता के पहले ही श्लोक में मिल जाती है।

धर्मक्षेत्रे कर्मक्षेत्रे समवेता युयुत्स्व।

मां च मां कः पाण्डवश्चेति किमकुर्वन् संजय ! ॥

एक को ही धर्मक्षेत्र कह रहे हैं और उसी को कर्मक्षेत्र कह रहे हैं, इसका मतलब क्या? मतलब बाहर के युद्ध के मैदान से मैं कम समझता हूँ, हमारे भीतर के समरांगण से ज्यादा समझता हूँ।

मैंने कहा कि उसे प्रतीकात्मक रूप में लें तो वह हमारी वृत्तियों का युद्ध है। और अगर वृत्तियों से लड़ने की बात श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं तो वही बात भगवान महावीर कहते हैं। श्रीकृष्ण कहते हैं - युद्धस्व और महावीर कहते हैं अरिहन्त बनो।

अरिहन्त बनो, इसका मतलब है अरियों का हनन करो। शत्रुओं पर वार करो। कौन से शत्रुओं पर वार करेंगे? महावीर के अरिहन्त में और गीता के भीतरी युद्ध में कोई अन्तर नहीं है। उस युद्ध को पहचानो, अपने आपसे लड़ो। वस्तुतः आध्यात्मिक साधना और कुछ नहीं, अपने चित्त की दुर्वृत्तियों के खिलाफ युद्ध का आह्वान है। जो उनसे लड़ने के लिये तत्पर हो जाता है, सच्चे अर्थों में वही महावीर हो पाता है।

सीखें सीख सिकन्दर से

सिकन्दर ने सारी दुनिया को जीता। लेकिन आखिरी क्षणों में वह खुद से हार गया। वस्तुतः बाहर की हर जीत अन्ततः हार में परिणत होती है। और यदि अन्दर की लड़ाई में हार हो जाय तो वह जीवन की जीत का आधार बनती है।

भगवान महावीर कहते हैं - भीतर के तत्त्व को पहचानो। अपने विकारों पर विजय पाने की कोशिश करो। देखो, तुम्हारा शत्रु है क्रोध, तुम्हारा शत्रु है काम, तुम्हारा शत्रु है लोभ, तुम्हारा शत्रु है मोह। क्रोध, मान, माया, लोभ, मद, मत्सर ये सारे विकार हैं जो तुम्हारी आत्मा के निर्विकार स्वरूप को बिगाड़ रहे हैं। जो तुम्हें गंदा बना रहे हैं, जो तुम्हारे चित्त को विकृत बना रहे हैं। जिसके कारण तुम्हारा पराभव हो रहा है। तुम्हें अशान्ति का शिकार बनना पड़ रहा है। उससे अपने आपको बचाओ। उनके प्रति एक अभियान छोड़ो। वह अभियान यूँ ही संभव नहीं है, वह अभियान आत्मा के जागरण पर संभव है। अनन्तभव के अतीतकालीन इतिहास पर जब हम विचार करते हैं तो कभी महावीर भगवान भी हमारी ही तरह इन बुराईयों के शिकार थे। वे भी संसार में गोते खा रहे थे। संसारसागर में डूब रहे थे, उतरा रहे थे। लेकिन जब उन्होंने अपने आपको पहचाना, उनकी आत्मा में जागरण हुआ, जीवन के रूपान्तरण के लिये वे सन्नद्ध हो गये, तत्पर हो गये। उन्होंने अध्यात्म के मार्ग को आत्मसात् किया तो वे मारीचि से महावीर बन गये। भील से भगवान बन गये।

वे कहते हैं तुम्हारे भीतर सब कुछ हो सकता है। लेकिन उसके लिये आवश्यकता है जागरण की। तीन प्रकार की आत्माएँ हैं - पहली सुषुप्त आत्मा,

दूसरी जागृत आत्मा और तीसरी प्रबुद्ध आत्मा। सुषुप्त आत्मा वे हैं जिन्हें अपने और पराये का कोई भान नहीं। जैसे कोई व्यक्ति निद्रा में लीन रहता है तो उसे कुछ पता नहीं रहता। उसकी दुनिया ही अलग होती है। सुध-बुध खो जाता है। वह सुषुप्ति की स्थिति में जी रहा है। उनके जीवन में जो कुछ होता है वह स्वप्न जैसे एक चक्र के समान चलता रहता है। जब तक निद्रा रहती है तब तक स्वप्न रहता है। वे स्वप्न को ही सत्य मानने का भ्रम पाल लेते हैं। ऐसे लोगों के जीवन में रूपान्तरण होना संभव नहीं है।

दूसरे वे होते हैं, जो जाग तो जाते हैं पर जागने के बाद बिस्तर पर ही पड़े रहते हैं। आँखें खुल गयी, लेकिन आगे बढ़ने का प्रयास नहीं। सूर्य उग चुका है पर उसके अभिनन्दन का उल्लास नहीं। प्रकाश फैल चुका है, पर उससे अपने आपको आलोकित करने का कोई प्रयास नहीं है। ऐसे लोग जागृत होकर भी सोये हुए लोग हैं। जिन्होंने अध्यात्म के मर्म को जान तो लिया, लेकिन उसे क्रियान्वित करने के साहस में असमर्थ हैं। ये दूसरी श्रेणी के लोग हैं।

तीसरी आत्मा है प्रबुद्ध आत्मा। जो केवल जागृत ही नहीं, अपितु चल पड़ी है। जो अध्यात्म के अनुसंधान में आगे बढ़ जाये, वह प्रबुद्ध आत्मा है, प्रबुद्ध चेतना है। वह जागरूक व्यक्ति है, जो एक अभियान में आगे बढ़ रहा है। जो अपने जीवन के कल्याण के लिए सचेष्ट है, जागरूक है। वही अध्यात्म का सच्चा मार्ग है। उस मार्ग को जो अंगीकार करता है वही सच्चे अर्थों में धन्य हो जाता है। भगवान महावीर ऐसी प्रबुद्ध आत्मा की श्रेणी में आने वाले थे, जिन्होंने न केवल आत्मा को प्रबुद्ध बनाया अपितु वे अपने कैवल्य को प्राप्त हो भगवत्ता को पा गये। वस्तुतः सुषुप्त अवस्था से मुक्त होकर प्रबुद्ध अवस्था को प्राप्त करना ही जागरण का अभियान है और यहीं से हमारे जीवन के रूपान्तरण का मार्ग शुरू होता है। यह तब संभव होगा, जब हम अपने विकारों के निर्मलीकरण की प्रक्रिया में जुड़ेगे। उन विकारों को जीतने का हमारा प्रयास प्रारम्भ होना चाहिए।

भगवान महावीर से एक बार पूछा गया - दुनिया में विजेता कौन है ? उन्होंने कहा -

मनो विजेता जगतो विजेता ।

जिसने अपने मन को जीत लिया वह सारे जगत का विजेता है। हम सबसे जीतते हैं, पर मन से हार जाते हैं। जो अपने मन को अपने अंकुश में रखते हैं वे मन के विजेता कहलाते हैं। और जिनके ऊपर मन का असर होता है वे मन से हारे हुए होते हैं।

संत कहते हैं - अपने मन पर, अपने विकारों पर नियन्त्रण रखो। जिसका मन पर नियन्त्रण है वही सच्चे अर्थों में इंसान है। इंसान वह है जिसकी लगाम उसके हाथ में हो और जिसकी लगाम दूसरों के हाथ में है वह इंसान नहीं, जानवर है। जानवर की लगाम दूसरों के हाथ में होती है, इंसान की लगाम अपने हाथ में होती है। यदि अपने नियन्त्रण में हम खुद हैं तो इंसानियत के उसूल पर खरा उतर रहे हैं। यदि हम अपने में नियन्त्रित नहीं हैं, दूसरों से नियन्त्रित हो रहे हैं तो हमारे जीवन में पाशविकता का आविर्भाव हो रहा है। यह मौलिक अन्तर है।

मन पर विजय पाना बहुत जरूरी है। सम्राट सिकन्दर जब अपने विश्वविजय के अभियान में चला जा रहा था, तो उसे मालूम पड़ा बीच जंगल में कोई पहुँचे हुए संत हैं। सिकन्दर को साधु-संतों से मिलने का बड़ा शौक था। उसने अपने कुछ अनुचरों को संत के पास भेजा। कहा - जाओ, उन्हें मेरे दरबार में ले आओ। पर संत पक्के संत थे। जब सिकन्दर का फ़रमान उन्हें सुनाया गया तो उन्होंने कहा - मैं मन का राजा हूँ। मुझे किसी सिकन्दर से मिलने में कोई दिलचस्पी नहीं। आपको मालूम नहीं, सिकन्दर महान् कौन है ? आपको पता है इसका अंजाम क्या होगा ? संत बोले - नहीं, मैं जानता हूँ सिकन्दर कौन है। वह तो मेरे गुलामों का गुलाम है। सिकन्दर तुम्हारे गुलामों का गुलाम ? हाँ, जाओ अपने बादशाह से कहना - तुम्हारे मालिकों का मालिक है, उससे थोड़ा अदब से बात करो। बात सिकन्दर तक पहुँची। सिकन्दर को बड़ा अटपटा लगा, गुस्सा भी आया और आश्चर्य भी हुआ। आखिर कोई साधु मुझे अपने गुलामों का गुलाम कहता है ! चलकर के मिला जाय। सिकन्दर अपने लाव-लशकर के साथ वहाँ पहुँचा। देखा तो संत अपनी मस्ती में जमीन पर लेटे हुए थे। सिकन्दर ने कहा - आपने मुझे

अपने गुलामों का गुलाम कैसे कह दिया ? यह रिश्ता कहाँ से आया । अच्छा ! तुम कौन हो ? मैं सिकन्दर हूँ । किसके लिये निकले हो ? सारी दुनिया में विजय पाने के लिये । अच्छा, तुम अपने इस अभियान में निकले हो तो लालच से ही निकले हो ? हाँ, लालच से ही निकला हूँ । तुम अकेले नहीं हो, बहुत अधिक तुम्हारे साथ सैनिक हैं, उनको भी तुमने लालच दिया होगा ? हाँ, लालच दिया है । जब किसी को जीतते हो तो उसका गुमान या ग़रूर भी तुम्हारे मन में होता होगा ? हाँ, होता है । जब कोई तुम्हारी बात मानने से इंकार करता है तो तुम्हें गुस्सा भी आता होगा ? हाँ, गुस्सा भी आता है । इतने सारे लोगों को लेकर तुम चल रहे हो, उनको अनेक प्रकार के सब्जबाग दिखाते होगे, उनके साथ अनेक मायापूर्ण बातें भी करते होगे ? हाँ, करता हूँ । कई बार कई प्रकार के कूटनीतिक प्रयास भी तुमने किये होगे ? हाँ, किये हैं ।

मतलब तुम यह मान चुके हो कि तुममें लालच है, ग़रूर है, मान है, क्रोध है, माया है । तुम इन्हीं के वशीभूत होकर घर को छोड़ इतनी दूर आये हो ? हाँ, मैं इन्हीं के वशीभूत हो करके आया हूँ । बस, मैं यही कहना चाह रहा हूँ - यही है तुम्हारे और हमारे रिश्ते का रहस्य ।

तुम क्रोध, मान, माया, लोभ, मद आदि के वशीभूत होकर यूनान से चलकर इतनी दूर तक आये हो । लेकिन मैं क्या बताऊँ, मुझे गुस्सा नहीं आता, मुझे अभिमान नहीं है, मेरे अन्दर कोई मायाचारी नहीं है, मेरे अन्दर कोई लोभ भी नहीं है । इसलिये मैं कहता हूँ कि तुम जिनके वशीभूत हो, वे मेरे सेवक हैं । वे मेरे गुलाम हैं । इसलिये मैं तुमसे कहता हूँ कि सिकन्दर मेरे गुलामों का गुलाम है । उससे कहो कि अपने मालिकों के मालिक से थोड़ा अदब से बात करे ।

सिकन्दर नतमस्तक होकर रह गया । उसे अपनी गलतियों का आभास हो गया । काश, हम इस बात को पहचानें ! इस रहस्य को जानने का प्रयत्न करें और अपने जीवन को तदनु रूप ढालें तो हमारा जीवन महान् हो जायेगा । इसलिये कहते हैं-

मनो विजेता जगतो विजेता जितं जगत् केन मनो हि येन ।

मन को जीतना, मन के विकारों को जीतना है । मन जब तक कषायों से प्रभावित होता है, हमारा मन भटकता रहता है । लेकिन जब मन को संस्कारित कर लेते हैं तो वही मन हमारे कल्याण का साधन बन जाता है । जो मन के वश में होते हैं वे संसार में हारते हैं । जो मन को वश में कर लेते हैं वे संसार में जीत जाते हैं । हमारा मार्ग विजेताओं का मार्ग है । जिन बनने का मार्ग है । दूसरों पर नहीं, स्वयं पर विजय करना तभी संभव होगा, जब हम अध्यात्म के मार्ग को आत्मसात् करके चलेंगे । हमारा जीवन आध्यात्मिक होना चाहिए । उस तरह का प्रयास हमारे भीतर घटित होना चाहिए । तब हमारा जीवन जन से जिन बन जायेगा ।

बड़ा करें कैरियर का कैनवास

हममें और भगवान महावीर में अन्तर क्या है ? हम जन हैं, वे जिन हैं । जन वे हैं जो विकारों में जीते हैं । जिन वे हैं जो विकारों को जीत लेते हैं । हम पढ़ते हैं -

**जिसने राग द्वेष कामादिक जीते सब जग जान लिया
सब जीवों को मोक्ष मार्ग का निस्पृह हो उपदेश दिया ।
बुद्ध वीर जिन हरि हर ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहे
भक्ति भाव से प्रेरित हो यह चित्त उसी में लीन रहो ॥**

ये पंक्तियाँ हम पढ़ते हैं, अन्तर कुछ नहीं है । जिसने राग द्वेष कामादिक जीते, वह तो जिन हो गये । और जिसमें रागद्वेष-कामादिक जीते वे जन हो गये ।

हमारा प्रयास और प्रयत्न इन्हीं विकारों को जीतने का होना चाहिए । जितना-जितना हम विकारों पर विजय पायेंगे, हमारी चेतना विशुद्धि की ओर बढ़ेगी । हमारा जीवन महान होगा । जितना-जितना हम विकारों में जियेंगे उतना ही हमारा पतन होता जाएगा ।

दो प्रकार का जीवन है - एक विकृतिमूलक जीवन और दूसरा विशुद्धिमूलक जीवन । जो विकृति में जीते हैं वे संसार में रहते हैं । जो विशुद्धि में रहते हैं वे संसार

से पार उतर जाते हैं। महावीर वही होते हैं जो विशुद्धि के मार्ग को अपनाते हैं। उस मार्ग को हम अपनायें, उसके लिये हमारा एक प्रयत्न हो, प्रयास हो। यह वास्तव में हमारे जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि मानी जायेगी। लेकिन क्या करें? हम जड़ उपलब्धियों के प्रति तो जागरूक रहते हैं, पर अपनी चेतना के उत्कर्ष के प्रति उतना ध्यान नहीं दे पाते।

मैं हमेशा यह कहता हूँ कि आज का हर युवक अपने कैरियर के लिये बहुत चिन्तित रहता है। हर व्यक्ति के सामने प्रश्न है। कैरियर गाईड भी बहुत सारे चल पड़े हैं। उसके लिये अलग-अलग कोर्सेस भी होने लगे हैं। पर्सनलिटी डेवलपमेंट के नाम पर। मेरे भाई, आखिर तुम अपने कैरियर को समझ क्या बैठे हो? केवल वर्तमान के इस छोटे से जीवन का कैरियर मात्र हमारा कैरियर नहीं होता। यह कैरियर, जिसे सुधारने के लिए हम बहुत ज्यादा प्रयत्नशील हैं, यह तो बहुत छोटा-सा है। हमारा कैरियर बहुत विराट है। जिसका सम्बन्ध केवल इस जन्म से नहीं, उससे पहले भी है और मृत्यु से आगे भी है। उस व्यापक जीवन को देखने की कोशिश कीजिए। उसे सुधारिए।

वस्तुतः हम चाहे अपना कैरियर कितना ही ऊँचा क्यों न बना लें। जीवन व्यवहार अच्छा नहीं बन पाया तो सब चीजें निरर्थक हैं। कैरियर जीवन की उन्नति को भी कहते हैं और कैरियर उसे भी कहते हैं, जिसमें बोझा ढोया जाय। जीवन व्यवहार को सामने रख कर यदि तुमने कैरियर को आगे बढ़ाया है तो वह वस्तुतः तुम्हारे कल्याण का कारण है। यदि उसे गौण कर दिया तो वह जिंदगी के बोझ को ढोने का साधन मात्र है। ऐसे कैरियर को महत्त्व मत दीजिए। विराट कैरियर को सुधारिये। वह कब सुधरेगा? जब हमारा कैरेक्टर सुधरेगा। कैरियर हमारे कैरेक्टर के साथ जुड़ा होना चाहिए। जब तक हम अपने मूलभूत चरित्र को उज्ज्वल नहीं बनायेंगे हमारा जीवन उन्नत कभी भी नहीं हो सकता। जीवन की उन्नति का मूल तत्त्व हमारा अपना चरित्र है। और इस चरित्र को कोई क्षति पहुँचाने वाले हैं तो वे विकारी भाव हैं। उन विकारी भावों का उन्मूलन करना हमारा पहला प्रयास होना चाहिए। महावीर वही हो पाते हैं जो अपने विकारों को जीतते हैं।

यात्रा सत् और चित् से आनन्द की

हममें, संसार की इतर वस्तुओं और भगवान महावीर में क्या अन्तर है? हम हैं, यह टेबिल है, यह घड़ी है, यह माइक है, इनमें क्या अन्तर है? देखा जाय तो जो अस्तित्व हमारा है, वह अस्तित्व इनका भी है। सत्ता की दृष्टि से इनमें और हममें कोई अन्तर नहीं है। हम दोनों में सत् है। लेकिन अन्तर है। क्या अन्तर है? हममें सत्ता के साथ-साथ चेतना है, इनमें सत्ता के साथ चेतना नहीं है। हम सत् और चित् हैं। ये केवल सत् हैं। ये जड़ हैं, इनमें सुख-दुःख का संवेदन नहीं। अच्छे-बुरे का विवेक नहीं। किसी भी प्रकार का अनुभव नहीं। ये जड़ हैं। हम चेतन हैं। सुख-दुःख का अनुभव करते हैं। अच्छे-बुरे का विकल्प करते हैं। अपने पराये का संवेदन करते हैं। हम चेतन हैं, हममें सत्ता है और साथ-साथ चेतना है। लेकिन जब हम अपने सामने भगवान महावीर को खड़ा करके देखते हैं तब लगता है सत् और चित् तो हममें है, लेकिन महावीर केवल सत् और चित् नहीं हैं, वह परम चेतन हैं। जब वे चेतन न होकर परम चेतन हो गये तो उनकी सत्ता सत्ता न रहकर परम सत्ता बन गयी। हममें केवल सत्ता है उनमें परमसत्ता है। हम केवल चेतन हैं, वे परमचेतन हैं। हम आत्मा हैं, वे परमात्मा हैं।

भगवान महावीर कहते हैं - हर सत्ता के भीतर परम सत्ता है। हर चेतन में परम चेतन है। जिनकी सत्ता परम सत्ता हो जाय, जिनकी चेतना परम चेतना से जुड़ जाय, वे पामर से परमेश्वर हो जाते हैं। उनके जीवन में केवल सत् और चित् ही नहीं होता। सत् और चित् के साथ आनन्द जुड़ जाता है। हम सत् और चित् हैं, वे सच्चिदानन्द हैं। हममें और उनमें कमी है तो आनन्द की कमी है। वे आनन्द में निमग्न हैं, हम सत् और चित् में उलझे हैं।

भगवान महावीर कहते हैं - वह आनन्द तुम्हारे भी भीतर है, लेकिन अभी उसके ऊपर आवरण पड़ा है विकारों का। उसे हटा दोगे, तो आनन्द का स्रोत फूट पड़ेगा। चट्टान के नीचे निर्मल स्रोत है, लेकिन वह प्रकट नहीं हो पा रहा है। होगा भी कैसे? जब तक चट्टान है, तब तक स्रोत नहीं फूट सकता। जब तक हमारे ऊपर विकारों का आवरण पड़ा है, भीतर के आनन्द का स्रोत फूट नहीं सकता। उस आनन्द की अभिव्यक्ति का नाम ही भगवत्ता की उपलब्धि है।

भगवान् महावीर अपने परम आनन्द में लीन हैं और वे हमें उसी परम आनन्द में सराबोर करना चाहते हैं। वे कहते हैं - सत् और चित् में सीमित न रहो। आनन्द की भूमिका का स्पर्श करो। होगा। कब होगा? जब हम अपने आपको पहचानेंगे। पतित से पतित व्यक्ति भी पावन बन जाता है। मारीच को महावीर बनने में देर नहीं, यदि एक बार चेतना जाग जाय तो। अंजन चोर निरंजन बन सकता है, भील भगवान बन सकता है, फिर हम क्यों नहीं कर सकते हैं, केवल इसके लिए आवश्यकता है अध्यात्म की। एक बार यदि हमारी आत्मा में जागरण हो गया तो समझ लेना हमारा सारा दुःख सुख में परिवर्तित हो जायेगा। जैसे आध्यात्मिक जागरण होता है, अध्यात्म का जागरण होते ही दुःख सुख में परिवर्तित हो जाता है। अशान्ति शान्ति में बदल जाती है। कष्ट आनन्द में परिवर्तित हो जाता है। जीवन में जो यह हा-हाकार है वह जय-जयकार में परिवर्तित हो जाता है। आवरण मिट सकता है यदि हम उसे पहचाने तो। उसके लिये हमें पुरुषार्थी बनना पड़ेगा। जागरूक बनना पड़ेगा। अन्दर उतरना पड़ेगा।

बाँसुरी में चार गुण

देखिए बाँस और बाँसुरी दोनों एक ही वंश में उत्पन्न होती हैं, लेकिन बाँस को कोई पूछता नहीं और बाँसुरी सर्वत्र सम्मान पाती है। बाँसुरी सम्मान क्यों पाती है, आपको पता है क्या? ढोलक और बाँसुरी की बात तो मैं आपको बता चुका हूँ। आज फिर से नहीं बताऊँगा। बाँसुरी को एक बार श्रीकृष्ण के हाथों में देखा तो गोपियों के मन में बड़ी ईर्ष्या आयी। वे बोली - वाह, बाँस की चीज, काली-कलूटी, उसमें भी छेद पर छेद हैं इसमें। फिर भी उसको आप चौबीसों घण्टे चिपकाये रहते हो? यहाँ तक की जब सोते हो तो अपने तकिये पर रखते हो। हममें क्या कमी है, जो आप हमें निहारते भी नहीं हो। चाहे जब हमारे बीच से दूर चले जाते हो।

श्रीकृष्ण ने कहा - इस मुरली को मैं अपने साथ रखता हूँ इसलिये कि इसमें कुछ खासियत है। मैं मानता हूँ कि यह पोली है, काली है, इसका ज्यादा मूल्य नहीं है। लेकिन फिर भी इसमें कुछ ऐसे गुण हैं, जिनने इसके मूल्य और महत्त्व दोनों को बढ़ा दिया है।

गोपियों को बड़ा आश्चर्य हुआ, बोली - इसमें क्या खास बात है?

श्रीकृष्ण बोले - इसमें चार गुण हैं। पहला यह बिना बुलाये नहीं बोलती। दूसरा जब भी बोलती है मधुर बोलती है। और तीसरा गुण है कि इसमें कोई गाँठ नहीं है। यह एकदम सीधी है अर्थात् इसमें कोई छल-छिद्र नहीं है। और चौथी बात यह कि यह अपने भीतर कोई विकार नहीं रखती। इसमें फूँक मारते ही अपने पेट में से अपने सारे विकारों को छिद्रों के माध्यम से बाहर निकाल देती है। इसलिये मैं इसे पसंद करता हूँ।

यदि कृष्ण को परमात्मा मानकर चलें और मुरली को अपना जीवन, तो यह बात हमारे लिए बहुत गहरा संदेश देती है। सच में हम अपने जीवन को मुरली जैसा महान् तभी बनायेंगे, जब हमारे जीवन में संयम हो, जीवन सरल हो, जीवन निर्विकार हो, जीवन में मधुरता हो। यह जीवन की उन्नति का सूत्र है।

संयम, सरलता, मधुरता और निर्विकारता भगवत्ता के आधार हैं। भगवान महावीर ने इन्हें आत्मसात् किया। इनकी साधना की। उन्हें शिखर तक पहुँचने में कई भव लग गये। हमें भी शुरुआत करनी पड़ेगी। भगवान महावीर की तरह हमें भी कई भव गुजारने पड़ेंगे। लेकिन यह तब होगा जब हम आज से शुरुआत करेंगे।

गच्छन् पिपीलको याति योजनानामशतान्यपि

किसी भी कार्य की यदि हमने ठीक ढंग से शुरुआत कर दी है तो सफलता अवश्य मिलेगी। शुरुआत के अभाव में हम उसकी कितनी ही चर्चा करते रहें, सफलता कभी नहीं मिल सकती। हम लोग बातें तो बहुत करते हैं, पर अपने मन से पूछना कि तुम्हारे मन ने महावीर होने की तैयारी कभी की है? महावीर के गीत गाना, महावीर की बातें करना और महावीर बनने की तैयारी करना, इनमें बहुत अन्तर है। आज महावीर होने के लिये कोई तैयार नहीं है। बहुत कम लोग होते हैं जो तैयारी करते हैं। यह तभी संभव होता है जब हम उस मार्ग पर चल पड़ें, आगे बढ़ें, धीमी गति से चलें पर चलें। महावीर होने के लिये स्वयं को तैयार कीजिये। ध्यान रखना, तैयारी मात्र करने से महावीर नहीं बन पाओगे। उसके

लिये हमें बहुत पापड़ बेलने पड़ेगे। बहुत चलना पड़ेगा। लेकिन घबराइये मत। रास्ता लम्बा है, लेकिन घबराने की कोई बात नहीं है। लम्बे रास्ते को भी यदि हम चाहें तो एक-एक कदम रखकर पूरा कर सकते हैं। यह महत्त्वपूर्ण नहीं कि हमें कितना चलना है, बस हमने तय कर लिया तो हम पहुँचेंगे ही। जरूर पहुँचेंगे।

सम्मेद-शिखर जी की पहाड़ी की वन्दना के लिए एक आठ वर्ष का बेटा अपने दादा जी के साथ चला जा रहा था। घना अंधकार था। बेटे ने अपने दादा से कहा - कि दादा इतनी लम्बी पहाड़ी और इतना घना अंधकार कैसे चढ़ेंगे? अपने हाथ में जो टार्च है, उसकी रोशनी तो चार-पाँच फुट तक ही होती है। कैसे चढ़ेंगे? दादा ने बेटे को समझाते हुए कहा - बेटे, ठीक कह रहे हो। पहाड़ी लम्बी है और अपने पास टार्च की रोशनी भी बहुत थोड़ी है, लेकिन घबराने की जरूरत नहीं। क्योंकि हमें पहाड़ी नहीं चढ़नी है। हमें तो एक कदम चलना है। एक-एक कदम चलते जायेंगे। हमारी रोशनी भी आगे बढ़ती जायेगी। और चलते-चलते हम पूरी पहाड़ी चढ़ जायेंगे। ध्यान रखना, एक-एक कदम चलते-चलते हजारों मील की यात्रा कर लेते हैं। और हजारों मील की चर्चा करने वाले एक कदम भी नहीं चल पाते। एक कदम ही सही पर हम चलें, चढ़ें, कुछ आगे बढ़ें। ये पंक्तियाँ बड़ी सार्थक दिखती हैं -

कुछ लिख के सोओ

कुछ पढ़ के सोओ

जिस जगह जागा सबेरे

उस जगह से बढ़ के सोओ

एक सीढ़ी चढ़ के सोओ

कुछ लिख कर सोओ.....

सीढ़ी चढ़ने की तैयारी आपको करनी है, दूसरों को नहीं। हमारी भीतरी तैयारी सुनिश्चित हो तो हम जीवन में बहुत बड़ी सफलता अर्जित करने का सौभाग्य पायेंगे। और यदि ऐसी तैयारी नहीं है तो हम भले महावीर की बातें करें, महावीर के गीत गायें, उससे हमारा काम नहीं होने वाला।

कैसे मनायें महावीर जयन्ती

भगवान् महावीर कहते हैं - मेरी जयकारा लगाने से तुम्हारे भीतर के महावीर प्रकट नहीं होंगे। हाँ, जब तुम अपने आपको जीतना शुरू करोगे तो तुम्हारे भीतर का महावीर प्रकट होगा। उसके लिए हम अपनी मानसिक तैयारी शुरू करें। अपने आपको तत्पर बनायें। अपने भीतर की दुर्बलताओं को पहचानने और एक-एक करके उन सबको दूर करने का उपाय करें। धीरे-धीरे हमारी आत्मा की पात्रता प्रकट होगी और उस पात्रता के परिणाम स्वरूप हम अपने जीवन का उद्धार करने में समर्थ हो जायेंगे।

बन्धुओं, वही महावीर हमारे भीतर है, जिसे हमें जगाना है। उसके लिये अब कोई दूसरा महावीर आकर के हमें संबोधित नहीं करेगा। हमें खुद को ही जगाना होगा। उसके लिये वैसा प्रयास करना होगा। निश्चित ही हम अपने जीवन में एक बहुत बड़ी उपलब्धि घटित कर सकेंगे। और यदि ऐसा नहीं करते हैं तो हमारा सारा जीवन यूँ ही बर्बाद हो जायेगा।

बन्धुओं, हमारा यह जीवन सार्थक होना चाहिए। हम पेड़ लगाते हैं, तो पेड़ फलता है, फूलता है तब तो उसकी सार्थकता है। पेड़ लगाया, खाद-पानी दिया और पेड़ बड़ा हो गया, लेकिन उसमें फूल-फल नहीं लगे तो उस पेड़ से क्या मतलब? उसका कोई अर्थ नहीं। उसका कोई औचित्य नहीं। पेड़ की सार्थकता तभी है जब उसमें फूल और फल लगे। हमने यह जीवन बहुत मेहनत के साथ खाद-पानी दे-देकर सींचा है, अपितु बड़ा भी किया है। अब देखना है कि जीवन-वृक्ष फूल और फल दे रहा है कि नहीं। ऐसा तो नहीं कि तुम्हारा जीवन किसी बाँझ पेड़ की सेवा में लग गया हो। यदि ऐसा किया तो यह बहुत बड़ी नादानी है। अपने मन को टटोल कर देखिए। अपने मन का विश्लेषण कीजिए और उसको सही दिशा दीजिए। निश्चित रूप से हम अपने जीवन में एक बहुत बड़ी उपलब्धि घटित करने का सौभाग्य पायेंगे। यदि ऐसा नहीं करते हैं तो हमारी बातें केवल बातें ही होगी। उसका कोई सार्थक नतीजा हमारे हाथ में नहीं आयेगा। हमारा जीवन बहुत थोड़ा है, आज है, कल रहे न रहे। इससे पहले कि हमारा जीवन सिमटे हम

अपनी जीवन यात्रा में ऊर्ध्वरोहण करने का प्रयास करें। अपनी चेतना का ऊर्ध्वरोहण करने का प्रयास करें। अपने चित्त का उदात्तीकरण करने का प्रयत्न करें। यदि ऐसा करते हैं तो वास्तव में वह हमारे जीवन की सबसे उत्तम घड़ी मानी जायेगी। वह हमारे जीवन के कल्याण का सबसे बड़ा अवसर माना जायेगा। यदि हम ऐसा नहीं करते हैं तो जो हमने पाया है, जीवन में एक अच्छा मौका गंवा देंगे।

हमारे जीवन में ऐसी कोई चूक न हो पाये। ऐसा प्रयास हमें निरन्तर करते रहने की जरूरत है। जब हम चलेगे, तभी हमारा रास्ता पूरा होगा, बातों से नहीं होगा। बातें तो हम लोग बहुत करते हैं। काम कम करते हैं। लम्बे प्रवचन की शृंखलायें चलीं तो उन पर आचार्य महाराज ने एक दिन कहा - चिंतन, मनन, प्रवचन बहुत हुए। अब कुछ करिये। बात करने की है, करेगे तभी हम पहुँचेंगे। इस दिशा में हम लोगों को कुछ प्रयास करने की जरूरत है।

मैं भी आप सबसे यही कहना चाहता हूँ कि हम लोग भगवान महावीर की जयन्ती में बहुत उत्साह दिखा रहे हैं। कल के आयोजन की प्रसन्नता है। आपको प्रसन्नता होगी, महाराज को प्रसन्नता नहीं है। ध्यान रखना, महाराज तुम्हारे आयोजन और उत्सव से प्रसन्न नहीं होंगे। महाराज को प्रसन्नता तब होगी जब तुम्हारे जीवन में उत्सव प्रकट होगा। जीवन में उल्लास होना चाहिए, जीवन में उमंग होना चाहिए। बाहर का उल्लास/ उमंग तो क्षणिक है। जीवन जब उत्सव बनता है तो उसका आनन्द ही कुछ और होता है। इस दिशा में अब प्रयास करने की जरूरत है। एक बार बड़ा बाजार में कहा था - किसी बात को मैं छेड़ता नहीं और छेड़ता हूँ तो छोड़ता नहीं। इस बात को ध्यान रखना। लोग सोच रहे होंगे कि महाराज तो भूल गये होंगे। महाराज भूलने वाले नहीं हैं। जो बातें मैंने आप सबसे की हैं उन बातों पर आप सबको बहुत गम्भीरता से सोचना है। हम कम से कम समाज में व्याप्त बुराईयों के उन्मूलन के लिए सार्थक प्रयास करें। जिससे हम समाज को व्यसन-मुक्त बना सकें। हमारी युवा पीढ़ी भी भ्रमित होने से बच सके। हमारी सामाजिक पहचान कायम हो सके। इस तरह के प्रयत्न करना हैं। अभी तो मैं केवल संकेत कर रहा हूँ, फिर बैठकर आप सबसे बात करूँगा। आप लोग

अपनी मानसिक तैयारी कर लें। हम अपने निर्धारित कार्यक्रम से काफी पीछे हो गये हैं। जिसकी अन्तिम आहुति महावीर जयन्ती को होनी चाहिए थी, उसकी अभी तक चर्चा ही नहीं हो पायी। ठीक है, परिस्थितियाँ और प्रसंग के अनुसार सब कुछ आगे-पीछे हो जाया करता है। लेकिन अब उसमें पीछे होने की जरूरत नहीं है। कल का महावीर जयन्ती का आयोजन हम धूम-धाम से मनायें, पूरे आनन्द के साथ मनायें।

बन्धुओं, ध्यान रखना, महावीर केवल मूर्तियों में नहीं, महावीर केवल चित्रों में नहीं, महावीर हमारे चेहरों में दिखना चाहिए। तभी हम अपना कार्य कर पायेगे। हमने महावीर की मूर्तियाँ तो काफी सुन्दर-सुन्दर गढ़ ली हैं, बहुत अच्छे-अच्छे चित्र बना लिये हैं, लेकिन हम अपने चरित्र को सुरक्षित नहीं रख पाये तो उस चित्र का कोई मतलब नहीं होगा। महावीर के अनुयायी की यह जिम्मेदारी है कि महावीर के चरित्र को साफ-स्वच्छ बनाये रखें। उसमें कोई धब्बा न दिखायी दे। तब सच्चे अर्थों में हम महावीर के मार्ग को आगे बढ़ा सकेंगे और अपने आपको महावीर का अनुयायी कहकर गौरवान्वित महसूस कर सकेंगे।

विजय संकल्पशक्ति की

**एसो पंचणमोयारो सब्बपावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सब्बेसिं पढमं होइ मंगलं ॥**

चन्दन सा महकायें जीवन

किसी सज्जन के माथे पर तिलक नहीं लगा होता और किसी दुर्जन के सिर पर सींग नहीं उगे हुए होते। जन्मतः न कोई सज्जन होता है और न दुर्जन ही होता है। मनुष्य के बाहिरी आकार से उसकी सज्जनता और दुर्जनता का पता नहीं लग सकता। लेकिन व्यक्ति सज्जन और दुर्जन होता है और उसकी सज्जनता और दुर्जनता का मूल आधार उसकी प्रवृत्ति, उसका व्यवहार, उसका चिन्तन और उसका चरित्र होता है।

हंस और सूकर, दोनों मानसरोवर में उतरते हैं। सूकर ठेठ नीचे तक जाकर उस पानी को मथकर मलिन कर देता है। कीचड़ फैला देता है, कीचड़ मचा देता है। जबकि इसके विपरीत हंस, उस मानसरोवर में तैरते हुए अपनी धवलिमा से उस मानसरोवर की शोभा को भी बढ़ा देता है।

संसार में हर तरह के लोग होते हैं। कुछ लोग होते हैं जो सूकर की तरह संसार के मानसरोवर को गंदा करते हैं, मलिन करते हैं, विकृत करते हैं। कुछ लोग वे भी हैं जो हंस की तरह संसार के मानसरोवर में तैरते हुए मानसरोवर की शोभा को बढ़ाते हैं। सच्चे अर्थों में वही संत और सज्जन की श्रेणी में आते हैं।

हमारा जीवन हमारे हाथ में है। हम अपने जीवन का कल्याण भी कर सकते हैं तो जीवन का विनाश भी। एक ही जीवन से दोनों स्थितियाँ हो सकती हैं। धरती में बीज पड़ता है। वह बीज धरती के गर्भ में जाकर उससे रस लेता है। धरती से लिये गये रस से वह पौधा और वृक्ष बनकर उसमें फूल भी खिलते हैं और काँटे भी निकलते हैं। फूल और काँटा, धरती के एक ही रस का परिणाम है।

कुछ हैं जो फूल अर्पित करते हैं। वे धरती पर जन्म लेकर फूल की तरह खिल रहे हैं। और अपने मुक्त मकरंद से सारे वातावरण को सुवासित कर रहे हैं। वहीं कुछ ऐसे लोग भी इस धरती पर अवतीर्ण हुए हैं जो अपना जीवन काँटे की तरह जिये और सारे समाज के लिये कंटक बने रहे। उनका नाम लेना भी कोई पसंद नहीं करता। यह हम पर निर्भर करता है कि हम काँटे की तरह जीना चाहते हैं या फूल की तरह। तय है कि फूल बहुत थोड़े होते हैं और काँटे बहुत अधिक। काँटे जल्दी पैदा हो जाते हैं, फूल को पनपने में समय लगता है। काँटे शुरू से आते हैं और अन्त तक टिके रहते हैं। फूल बहुत थोड़े पलों के लिये होते हैं, खिलते हैं और मुरझा जाते हैं।

संत कहते हैं - लम्बा-चौड़ा जीवन काँटों की तरह ही अर्थहीन है और फूल का दो पल का जीवन भी लाभप्रद है। पूरे बाग में एक फूल ही क्यों न खिले, वह पूरे बाग को खिला देता है। बाग के हजारों काँटे बाग को खिलाने में समर्थ नहीं होते। अपने जीवन को फूल की तरह खिलाने की कला अपनाने की जरूरत है। यह कैसे संभव होगा? यह तभी संभव होगा, जब हम अपने चरित्र और प्रवृत्ति के प्रति ध्यान दें। वस्तुतः हमारा सारा जीवन हमारे चरित्र पर निर्भर करता है।

चरित्र क्या है? मनुष्य की अच्छी-बुरी प्रवृत्तियाँ और उसके मन में उत्पन्न होने वाली भावनाओं का समूह ही चरित्र है। हमारे मन में रातदिन अच्छे-बुरे भाव उत्पन्न होते रहते हैं। उन भावों के निमित्त से हमारी आत्मा में वैसे ही संस्कार जन्म लेते हैं। उन्हीं संस्कारों के कारण हमारी वैसे प्रवृत्तियाँ बन जाती हैं। और जैसी प्रवृत्तियाँ बनती हैं, वैसा हमारा चरित्र बन जाता है।

हम यूँ कहें कि हमारी अच्छी-बुरी प्रवृत्तियों से हमारा अच्छा-बुरा चरित्र बनता है। अच्छी प्रवृत्तियाँ और अच्छी भावनायें अच्छे संस्कारों का समारोपण करती हैं। जबकि बुरी प्रवृत्तियाँ और बुरी भावनाओं से दूषित संस्कार आरोपित होते हैं। जहाँ दूषित संस्कार समारोपित होंगे, वहाँ उसका दुष्परिणाम तो सुनिश्चित रूप से होगा ही। अच्छे संस्कारों का ही अच्छा परिणाम होता है। अब हमारे ऊपर निर्भर है कि हम किस तरह के संस्कारों का आरोपण करते हैं। किन्हीं पल्लवित

करते हैं, किन्हीं ज्यादा आगे बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं। यह बहुत बड़ी सच्चाई है कि अच्छाई के आरोपण में बहुत समय लगता है और बुराईयों के आरोपण में कुछ भी प्रयास करने की जरूरत नहीं होती। बुराईयाँ हमारे जीवन से अनायास ही जुड़ जाती हैं, उनके लिये अतिरिक्त प्रयत्न और पुरुषार्थ की आवश्यकता नहीं होती। जबकि अच्छाई के लिये हमें बहुत ज्यादा यत्न करना पड़ता है।

धरती पर यदि चन्दन का पेड़ लगाओ, तो उस पेड़ को खड़ा करने में बहुत परिश्रम करना पड़ता है। वर्षों उसे सींचना और सम्हालना पड़ता है। खाद-पानी देना पड़ता है, तब कहीं जाकर वह चन्दन का पेड़ खड़ा हो पाता है, बड़ा हो पाता है। लेकिन बेशरम (एक ऐसी वनस्पति जो हमेशा हरी बनी रहती है) या गाजरघास को उगाने के लिये कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। अच्छे गुलाब के पौधे को लगाने के लिये बहुत प्रयत्न करना पड़ता है।

बन्धुओं, बुराई वह गाजरघास है जो हमारे चित्त की भूमि में जड़ जमाये हुए है। जिससे हमारे चित्त की पूरी-की-पूरी भूमि बर्बाद हो जाती है। एक बार गाजरघास उगती है तो उगती ही जाती है, उसे सम्हाल पाना बहुत मुश्किल होता है। और यह तय है कि जिस भूमि पर गाजरघास पड़ी रहेगी उस भूमि पर अच्छा बीज भी बोया जायेगा तो वह अंकुरित नहीं हो सकेगा। अच्छे बीज के अंकुरण के लिये जरूरी है कि उस गाजरघास की जड़ को उखाड़कर हटायें।

युग-युगान्तरों से हमारे चित्त की भूमि विकृत हो चली है। उसमें बुराईयों की गाजरघास बहुत तेजी से पनपी है। उसके रहते कोई अच्छाई का बीज हमारे अन्तरंग में पड़ता भी है तो वह पनप नहीं पाता। संत कहते हैं - अपने अन्तर्मन का निरीक्षण करो और जो बुराईयाँ हैं उन्हें दूर करने का प्रयत्न करो। बुराईयों के अन्त के साथ जब अच्छाईयों के रोपण की बात हम आरम्भ करते हैं तो वहीं से जीवन के रूपान्तरण की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। वहीं से हमारे जीवन का निर्माण शुरू हो जाता है। हम अपने जीवन का निर्माण करना चाहते हैं तो उसी तरफ अपने को केन्द्रित करने की जरूरत है। वह कब होगा ? जब हमारे अन्दर संकल्प होंगे, सजगता होगी और सक्रियता होगी।

संकल्प शक्ति के आगे झुकती जीवन की सारी बाधाएँ

तीन बातों की बहुत ज्यादा जरूरत है - संकल्प, सजगता और सक्रियता। मनुष्य के संकल्प में बहुत बड़ी ताकत होती है। हम अपने आपको शुभ संकल्पों से जोड़ें। मनुष्य के लिये कोई भी काम असंभव नहीं है यदि उसके मन में संकल्प हो।

सर्व संकल्पवशात् भवति, लघुर्भवति वा महान् ।

मनुष्य के जीवन में जो कुछ भी घटता है वह उसके संकल्प से घटित होता है। यदि मनुष्य ठान ले तो असंभव को संभव बनाया जा सकता है। बहुत बड़ी ताकत होती है संकल्प में।

गुरु अपने शिष्यों के साथ चले जा रहे थे। रास्ते में एक चट्टान दिखाई पड़ी। गुरु ने शिष्यों से पूछा - इस चट्टान से भी कुछ कठोर है ? एक शिष्य ने कहा - गुरुदेव ! चट्टान से कठोर है लोहा, जो इस चट्टान को तोड़ सकता है। दूसरे शिष्य ने हस्तक्षेप करते हुए कहा - गुरुदेव, लोहे से भी कठोर है अग्नि, जो लोहे को भी गला देती है। तभी तीसरे शिष्य ने कहा - गुरुदेव, अग्नि से भी कठोर है पानी, जो अग्नि को भी बुझा देता है। चौथे शिष्य ने कहा - गुरुदेव, पानी की कठोरता क्या है, पानी से कठोर तो हवा है, जो पानी को उड़ा देती है। अगला शिष्य कुछ कहने वाला ही था कि गुरु ने स्वयं हस्तक्षेप करते हुए कहा - शिष्यो ! जगत् में सबसे कठोर है मनुष्य के मन का संकल्प। जो चट्टान को तोड़ सकता है, लोहे को गला सकता है, अग्नि को भी बुझा सकता है, पानी को भी उड़ा सकता है, और हवा को भी बाँधने में समर्थ होता है। यह हमारे अन्तरंग के संकल्प की विशेषता है। **जो मनुष्य अन्तरंग से संकल्प लेता है तो संकल्प सिद्धियों का द्वार बने बिना नहीं रहता।**

ध्यान रखना, जितने भी संत-महात्मा हुए हैं, सिद्धयोगी हुए हैं, अर्हत हुए हैं, परमात्मा हुए हैं, वे सभी संकल्प के बल पर ही हुए हैं। जिनका संकल्प शुभ और दृढ़ होता है वे सिद्धि के सोपान तक पहुँच जाते हैं। सिद्धि की ऊँचाई को छू लेते हैं। और जिनका संकल्प शिथिल और लचीला होता है वे कहीं के भी नहीं रहते। आवश्यकता है अपने संकल्प को जगाने की। अगर हमारे अन्दर संकल्प है तो हम

वादियों में गुलाब खिलाने की सामर्थ्य पा सकते हैं। और अच्छे संकल्पों के अभाव में हम कुछ भी पा नहीं सकते। मनुष्य के जीवन की कामयाबी का यदि कोई मूलाधार है तो वह है संकल्प। हम अच्छे संकल्प लें और निकल पड़ें, निश्चित रूप से हमारे हाथ सफलता लगेगी। लेकिन हम लोग हैं, जो अकसर घबड़ा जाते हैं। काम हाथ में आने लगते हैं तो किन्तु परन्तु पहले से ही शुरू हो जाते हैं।

यह जो हमारे अन्दर का किन्तु और परन्तु है, वह हमारे संकल्प की कमी और आत्मविश्वास के अभाव का उदाहरण है। यदि हमारे अन्तरंग में आत्मविश्वास हो, दृढसंकल्प हो तो सारे काम बखूबी हो सकते हैं।

आवश्यकता है हम संकल्प लें। आइये हम संकल्प लें अपने जीवन के निर्माण का, अपने जीवन को सुन्दर और भव्य बनाने का। हमने अपने बाहिरी जीवन को खूब-खूब सजाने का प्रयत्न किया, तुम्हारे भीतर का जीवन कितना सजा और संवरा है? कहीं ऐसा तो नहीं कि बाहर की साज-सज्जा में तुम भीतर से कुरूप होते जा रहे हो। बाहर के इस सौन्दर्य से तुम्हारे भीतर जो कुछ घटित हो रहा है वह सुन्दर है कि नहीं, इसे देखने की कोशिश करो। कहीं ऐसा न हो कि बाहर से तो हम सुन्दर बने रहें और भीतर सब कुछ असुन्दर रह जाय।

भीतर का सौन्दर्य विकसित होता है आत्मगुणों के विकास में। भीतर का सौन्दर्य उद्घाटित होता है सदगुणों के विकास में। यदि हम ऐसा करते हैं तो सारा काम हो सकता है और उसके लिये ज्यादा कुछ करने की जरूरत नहीं। मन में शुभ संकल्प जगाने की जरूरत है, हम अपने मन में यह संकल्प करें, कि जीवन में जो मेरी बड़ी से बड़ी बुराई है, उसे मैं दूर करूँगा और अच्छाईयों का आरोपण करना शुरू करूँगा। यदि आप ठान लेंगे, तो कुछ भी असंभव नहीं है। मेरे सम्पर्क में ऐसे बहुत सारे लोग आये जो बड़ी से बड़ी बुराई के शिकार थे। लेकिन उनकी वह आदत या बुराई भी दूर हुई दृढ इच्छाशक्ति और प्रबल संकल्प के कारण।

आप लोग सम्मेशिखर के पहाड़ को चढ़ते हैं। टोटल सत्ताईस किलोमीटर की यात्रा है। जिसमें नौ किलोमीटर तो शुद्ध चढ़ाई है। इतनी बड़ी पहाड़ी आप

चढ़ते हैं, वन्दना करके आप लौटते हैं, आपको इतना बल कौन देता है? कभी आपने विचार किया। घर से दफ्तर भी आप बिना गाड़ी के नहीं जाते। घर की सीढ़ी चढ़ना-उतरना आपको भारी पड़ता है, इसलिये आपको लिफ्ट का आश्रय लेना पड़ता है। बिना लिफ्ट के आप सीढ़ी नहीं चढ़ते, और यह पहाड़ी आपको कौन चढ़ा देता है? कभी आपने विचार किया। साधारण रूप से कहें कि आप इस पहाड़ी पर चढ़ जाओ, तो आप चढ़ेंगे क्या? किसी हिलस्टेशन पर आपको जाना हो और कहा जाये कि आपको पहाड़ी पैदल चढ़ना है। एक किलोमीटर भी नहीं चढ़ पाओगे, सत्ताईस तो बहुत दूर की बात है। वहाँ किसी गाड़ी या टेक्सी की तलाश करोगे।

आप चढ़ने को राजी नहीं हैं, लेकिन यहाँ (सम्मेशिखरजी में) कौन चढ़ाता है? यहाँ चढ़ाता है आपके मन का संकल्प, जो आपकी आस्था से अनुबंधित है। आप घर से इरादा करके चलते हैं कि मुझे पहाड़ की वन्दना करना है। तीर्थराज की वन्दना करना है। मैं पैदल ही चलूँगा। दृढ़ता पूर्वक चढ़ूँगा। यदि मन में दृढ़ता है तो बड़े से बड़े पहाड़ को भी चढ़ा जा सकता है। यदि उसका संकल्प शिथिल है तो चार कदम भी चलने में समर्थ नहीं होता।

अभी पिछले वर्ष मैं जब सम्मेशिखर जी की वन्दना कर रहा था तो मैं प्रायः पार्श्वनाथ से अपनी वन्दना शुरू करता था। कारण भीड़-भाड़ कम हो और प्रत्येक टोंक पर निराकुलता से अपना समय दे सकूँ। मैं वन्दना करके चन्द्रप्रभ भगवान् की टोंक पर पहुँचा। लगभग साढ़े ग्यारह बजे बजे थे।

चन्द्रप्रभ की टोंक से उतरते हुए मुझे जयपुर के वृद्ध दम्पति मिले, उम्र होगी करीबन अठहत्तर-अस्सी की। उनके साथ उनकी एक बहू थी पचास-पचपन साल की। मैंने देखा कुल तीन लोग हैं, और कोई नहीं है। मैंने पूछा - क्यों क्या बात है, डोली नहीं की क्या? वे बोले - महाराज, डोली की ही नहीं, पैदल ही करने की भावना है। पिछले बार भी हमने पैदल ही वन्दना की थी। महाराज आप तो आशीर्वाद दें, पैदल ही पूरी वन्दना करना है। अब पता नहीं दुबारा वन्दना कर पायें या न कर पायें। आप तो आशीर्वाद दो, हम नौ बजे तक उतर जायेंगे। मैं देखकर दंग रह गया। यह है भावना। नौ बजे जायेंगे और हम उतर जायेंगे, आप तो आशीर्वाद दो।

मनुष्य के मन में यदि संकल्प जाग जाये तो असंभव भी संभव हो जाता है और यदि मन में संकल्प नहीं है तो संभव भी असंभव हो जाता है। ध्यान रखना, सच्चे संकल्प के अभाव में कुछ भी संभव नहीं। और शुभ संकल्प के लिये कुछ भी असंभव नहीं। इसलिये उसको जगाइये। अपने जीवन के निर्माण का संकल्प लीजिए। वैयक्तिक स्तर पर कुछ अच्छा बनने और अच्छा करने का संकल्प लीजिए। सामाजिक स्तर पर भी हम नवनिर्माण करने का संकल्प लें।

मन युवा, संकल्प युवा, फिर असंभव कुछ नहीं

कल मैंने कुछ बातें आप सबके बीच रखी थी, ध्यान रखना मैं छोड़ूंगा नहीं। मैं किसी बात को छोड़ता नहीं हूँ, और छोड़ता हूँ तो छोड़ता नहीं हूँ। मेरे सामने लोग आ रहे हैं। मुझे कन्वेन्श करने कर प्रयास कर रहे हैं। अरे भाई! जिस कार्य में समाज का व्यापक हित है, उसको तुरन्त ही स्वीकारना चाहिए। उसमें किसी भी प्रकार की टालमटोली और बहानेबाजी की बात तो करनी ही नहीं चाहिए। जहाँ तक मेरी धारणा है कि समाज के बहुसंख्यक लोग इस तरह के कार्यों से सहमत होते हैं। आज मुझसे कहा गया कि युवा वर्ग नहीं चाहता। मैंने कहा - युवावर्ग को मेरे सामने लेकर आओ, मैं उनसे सीधे बात करना चाहूँगा। मेरा अनुभव तो यह कहता है कि लोग युवा वर्ग को व्यर्थ में बदनाम करते हैं। जहाँ भी मैंने सामाजिक बुराईयों के उन्मूलन की बात उठाई है सबसे पहले युवा वर्ग का ही समर्थन मुझे मिला है, बाकी लोग बाद में आते हैं। हम युवाओं को बदनाम न करें, युवाओं की ओट में काम न करें। लाइये मैं युवाओं से रूबरू होना चाहता हूँ।

मेरे विचार के अनुसार तो युवावर्ग एक बहुत बड़ा परिवर्तन चाहता है। वह समाज में व्याप्त बुराईयों को दूर करने के लिये कटिबद्ध दिखता है। वह समाज की जो दकियानूसी और रूढ परम्पराएँ हैं, उनका उन्मूलन करना चाहता है। बशर्ते हम युवाओं को ठीक ढंग से समझायें। उनकी बात को सुनें। हर चीज की वास्तविकता का उन्हें बोध करायें। किस चीज की कितनी क्या अहमियत है, इसका उन्हें ज्ञान करायें। तो सारे काम अपने आप हो सकते हैं। इसलिये आवश्यकता है युवा वर्ग को भी जोड़ने की, उनसे मिलकर बातचीत करने की। कल मैंने कहा

था कि वर्षों से बन्द पड़े रास्ते को खोलना शुरू करते हैं तो हमें कटीली झाड़ियों व काँटे-कंकड़ आदि की चुभन को सहने के लिये तैयार होना होता है। लेकिन घबराइये मत। आप चलते जाइयेगा, सारे कंकड़-काँटे आपके पाँवों के स्पर्श से साफ होते चले जायेंगे। शुरुआत में दो-चार काँटे चुभेंगे, बाद में तो वह आम रास्ता बन जायेगा, जिसमें आप आँख मूँद कर भी चल सकने में समर्थ हो सकेंगे। किसी भी प्रकार की परेशानी आ नहीं सकती।

संकल्प मन में होना चाहिए, उस संकल्प का भाव जगाइये। हम लोग धर्म प्रभावना की बातें करते हैं। धर्म प्रभावना आखिर है क्या? क्या केवल मंचों के कार्यक्रम का नाम धर्मप्रभावना है, केवल जय-जयकारों का नाम धर्मप्रभावना है, या अपनी पहचान को बना करके जैनत्व को जीवन में प्रतिष्ठित करने का नाम धर्मप्रभावना है। मुझे समझ में नहीं आता कि धर्मप्रभावना है क्या चीज! **आचार और विचार के अभाव में की गई प्रभावना केवल सतही प्रभावना है। वह हमारे जीवन की स्थायी प्रभावना नहीं हो सकती। उससे न हमारा भला होगा, न समाज का भला होगा** समाज का भला तभी होगा, जब हम अपने आचार-विचार को निर्मल बनायेंगे। हम अपनी सामाजिक परम्पराओं को, सांस्कृतिक परम्पराओं को जीवित रखेंगे, उन्हें स्थापित करके चलेगे।

मत मोड़ें मुँह जिम्मेदारी से

यह हमारी सामूहिक जवाबदारी होती है, नैतिक जवाबदारी होती है, कि हम किसी परम्परा में जी रहे हैं, किसी परम्परा का निर्वाह कर रहे हैं तो उसको किस तरह से अमल में लायें? उनका पालन हम कैसे करें? हमारी कुशलता इस बात में नहीं है कि हम जिस बात को लागू करना चाहते हैं, उससे सम्बन्धित तो आगे आने वाली समस्याओं को मात्र खड़ा करें। हमारी कुशलता तो यह है कि उन समस्याओं का समाधान कैसे ढूँढा जाये।

पहले इस बात को स्वीकार करें कि इस कार्य को हमें सिद्धान्ततः करना चाहिए। यह हमारी पहचान का प्रश्न है। यह हमारी परम्परा का प्रश्न है। आने

वाली पीढ़ियों के लिये बहुत बड़ी जरूरत है। यदि इस चीज को हम स्वीकार लेगे तो धीरे-धीरे अपने आप रास्ता निकलता आयेगा। लेकिन हमने यदि बुराई को ही आत्मसात् कर लिया तो उसे दूर कर पाना बहुत मुश्किल होगा।

बन्धुओं, इसलिये मैंने कहा कि इसके विषय में आप लोग बहुत दृढ़ता से विचार कीजिए। आगे आने का प्रयास कीजिए। आप जितनी जल्दी यह कदम उठायेगे, उतनी ही जल्दी उसके अच्छे परिणाम आयेगे। मुझे समझ में नहीं आता, साधुओं के प्रति आप श्रद्धा तो बहुत व्यक्त करते हो, पर उनके उपदेशों का पालन नहीं करते हो।

एक बार आचार्य महाराज ने बहुत अच्छी बात की, समाज बहुत विचित्र है, पाँव पड़ती है, पूजा करती है, पर बात नहीं मानती। आप देखें, आपकी आस्था पर एक बहुत बड़ा प्रश्नचिह्न उठता है। हम पूरी श्रद्धा अर्पित कर रहे हैं, पूजा भी कर रहे हैं, और जब आपको कोई सत्परामर्श दिया जाता है तो कितने किन्तु परन्तु लगाते हैं। आप सोचिये, आप कर क्या रहे हैं? ध्यान रखिए, संतों के जो वचन होते हैं वे समाज के व्यापक हित में होते हैं। सबके कल्याण के लिये होते हैं। उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं होता। उनके अपने जो अनुभव होते हैं, बहुत बड़े होते हैं। जिसके मन में यह विश्वास होता है वह आँख मूँद कर चल देता है, और सफलता भी पा जाता है। जिसके मन में इस प्रकार के विश्वास की कमजोरी होती है वह किन्तु परन्तु में उलझता रहता है। अंजन चोर तो आढं ताढं कह कर चला गया और जिनदत्त सेठ ज्यों का त्यों रह गया।

कुछ लोग सोचते हैं कि महाराज को इन सब बातों की पड़ी क्या है? बिलकुल ठीक कह रहे हैं। आप मेरे मन की बात पूछें तो मैं तो यही चाहता हूँ कि जैसे मेरी शादी नहीं हुई आप सबकी भी न हो। इस चक्कर में ही न पड़ो, सबसे अच्छी बात है। पर बन्धुओं, यदि शादी करो तो बर्बादी से बचो। बुराइयों से बचो। जो तुम्हारी परम्परा को, जो तुम्हारी पीढ़ी को, जो तुम्हारे संस्कारों को, जो तुम्हारी पहचान को खत्म कर दे, खण्डित कर दे, उसे कहाँ से स्वीकार करोगे? यह उचित नहीं है। इसलिये उसके ऊपर हमें बहुत गंभीरता से विचार करने की

जरूरत है। सब लोग मिल-जुलकर करें। यहाँ उपस्थित युवा वर्ग से कहना चाहता हूँ, जो नहीं आया है उनसे भी मैं कहना चाहता हूँ, कि वे पहल करें। जब मैंने 1997 में जबलपुर में इस अभियान की शुरुआत की थी तो वहाँ के लोगों ने कहा कि महाराज, युवा लोग नहीं मानते। तो वहाँ जैन नवयुवकों की बहुत बड़ी संस्था है, जिसके तीन हजार सदस्य हैं। बड़े सक्रिय सदस्य हैं और बड़े सक्षम सदस्य हैं। जैन नवयुवक सभा के अध्यक्ष वहाँ बैठे हुए थे, उन्होंने कहा - महाराज ये लोग हम लोगों को व्यर्थ में बदनाम करते हैं। युवाओं की ओट में बात करते हैं। मैं युवाओं की ओर से, पूरी नवयुवक सभा की ओर से आपको पूरी तरह आश्वस्त करता हूँ कि इस नियम को समाज में लागू करने में हम सर्वप्रथम पहल करेंगे। हम लोगों की तरफ से विरोध नहीं होगा।

उसके बाद सारे युवा लोग हमारे सामने आये, सभी ने संकल्प लिया। उनमें पैतीस नवयुवक ऐसे आये थे कि जिनकी शादी तुरन्त ही होने वाली थी। उन नवयुवकों ने कहा कि हम अपनी शादी दिन में करने का संकल्प व्यक्त करते हैं। काम अपने आप हो गया। हम युवाओं को क्यों बोलते हैं, युवाओं को समझाइये, युवा कहीं पीछे नहीं रहेगे। मेरा तो अब तक का अनुभव है कि जितनी युवा शक्ति लगती है उतना कोई नहीं लगती। अपने आप सक्रियता आती है। सब जुड़ जाते हैं। इसलिये हमें कुछ परिवर्तन करने का संकल्प लेना चाहिये।

मुझे कर्तव्य निभाना है

मुझे कोई लेना-देना नहीं है। आप कह सकते हैं कि महाराज को सामाजिक मामलों से क्या लेना-देना? मुझे कोई मतलब नहीं। लेकिन मुझे एक प्रसंग याद आ गया। दो पड़ोसी थे। दोनों के बहुत सुन्दर अंगूर के बगीचे थे। एक अपने बगीचे की बहुत साज-सँभाल किया करता था। सावधानी रखता था। इससे उसके बगीचे की फसल भी बहुत अच्छी होती थी। लेकिन जो पड़ोसी था, वह बहुत आलसी और निकम्मा था। वह अपने बगीचे की देखरेख नहीं करता था। एक दिन पड़ोसी के बगीचे में गधा घुस गया। गधे ने अंगूर खाना शुरू कर दिया। अब उससे रहा नहीं गया। उसने अपनी लाठी उठाई और गधे को खदेड़ना शुरू कर

दिया। उससे पूछा गया कि - भैया, तुम्हें गधे को खदेड़ने की क्या जरूरत ? बगीचा पड़ोसी का है, गधा उसमें घुसा है, तुम्हें क्या करना ? उसे बहुत अच्छी बात की।

**यद्यपि न भवति मे हानि रासभः परकीयामृच्छते द्राक्षा ।
वस्तुविनाशं दृष्ट्वा तदपि परिखिद्यते मे मनः ॥**

यद्यपि मेरी व्यक्तिगत कोई हानि नहीं है, यह जो बगीचा है वह दूसरों का है, गधा जो अंगूर खा रहा है वह भी दूसरों के ही हैं, फिर भी वस्तु के विनाश को देखकर मेरा मन खिन्न होता है। क्योंकि गधे के लिये तो घास ही काम की है, अंगूर नहीं। अंगूर तो बड़े-बड़े लोगों के लिये हैं। यदि गधा अंगूर खा रहा है तो उसका वह दुरुपयोग कर रहा है। उसे देख करके मुझे तकलीफ होती है।

बन्धुओं, यही बात मैं कहता हूँ, मैंने अपने बगीचे को तो सम्हाल कर रखा है। लेकिन जब समाज के बगीचे में कुरीति का गधा देखता हूँ तो मेरे हाथ का डण्डा चल पड़ता है, मुझसे रहा नहीं जाता। मेरा ध्येय उस गधे को बाहर करना है। ध्यान रखना, उसे खदेड़े बिना रहूँगा भी नहीं।

उसे निकालने की जरूरत है। अंगूर का बगीचा आसानी से नहीं लगता, उसके लिये बहुत परिश्रम करना पड़ता है। उसे श्रम से सींचना पड़ता है। उस बगीचे को सुरक्षित रखो। नहीं तो कहीं वह आज का अंगूर का हराभरा बगीचा कल घास का बगीचा न बन जाय। उसको बचाइये, प्रयत्न कीजिए।

थोड़ा सोचिए, मुझे तो आत्मा और परमात्मा का उपदेश देना चाहिए था। और कहाँ मुझे इन बातों के विषय में बोलने के लिये मजबूर होना पड़ रहा है। हम अपनी पात्रता को कितने नीचे ले आये हैं। हम कहाँ जा रहे हैं। जैनधर्म की परम्परा को हम गौरवपूर्वक कैसे आगे बढ़ायेगे। क्या यह हम सबकी जवाबदारी नहीं होती ? इसलिये बार-बार सोचिये, सोचिये ही नहीं, संकल्पित होकर आगे आइये। पहल कीजिए। ठान लीजिए कि हमें करना ही है। जिनको हमसे सहमत नहीं होना है, उनके लिये कोई रास्ता हम बन्द थोड़े ही कर रहे हैं। हम तो व्यक्ति के स्तर पर और व्यक्ति-व्यक्ति से समूह के स्तर पर कार्य कर ही सकते हैं। कठिन

जरूर है, पर असंभव नहीं।

श्रद्धा में क्या काम तर्क का ?

बन्धुओं, महानता कठिनाई का सामना करने में है, महानता सरलता को अपनाने में नहीं है। हम उसे एक चुनौती के रूप में स्वीकार करें। आगे बढ़ें, निश्चित रूप से सफलता आयेगी। हमारे अन्दर केवल विश्वास होना चाहिए। दृढ़ आत्मविश्वास हो, प्रबल इच्छाशक्ति हो, तो असंभव अपने आप संभव बन जाता है। लेकिन हम सबका विश्वास बहुत कमजोर है। हमारे संकल्प बहुत शिथिल हो जाते हैं। पल में हम संभवतावादी दृष्टिकोण अपनाने लगते हैं। इसलिये या तो हम संकल्प लेते ही नहीं हैं अथवा लेते हैं तो इधर संकल्प लिया और उधर छोड़ दिया। ऐसा मत कीजिए। सोचिए, समझिये, और जो समय की माँग है उसके हिसाब से आगे चलने की कोशिश कीजिए। हम अपनी मौलिकता को कभी न खोयें। आज समाज बहुत आधुनिक हो गयी है। आधुनिकता का मैं विरोधी नहीं हूँ। आधुनिकता को अपनाये। लेकिन एक बात ध्यान रखें कि आधुनिकता की ओट में आपकी मौलिकता ही खण्डित न हो जाय। मौलिकता है तो कोई दिक्कत नहीं। वह आधुनिकता स्वीकार्य है जिससे हमारी पहचान बनी रहे। जिससे हमारी पहचान ही खण्डित हो जाय वह प्रगति प्रगति नहीं हो सकती। वह हमारे लिये प्रतिगति बन जायेगी। जो हमारे लिये अकल्याणकारी बनेगी। इसकी तरफ आप सबका ध्यान खींचना चाहता हूँ। मुझे जानकारी मिली है कि विचार मंथन चल रहा है। पर ध्यान रखना, मंथन वहीं तक करो, जहाँ तक नवनीत आये। ऐसा न हो कि नवनीत निकलने के बाद भी ज्यादा मथ दिया तो वह निकला हुआ नवनीत भी चला जायेगा। सीमित मात्रा में मंथन ठीक होता है, ज्यादा तर्क-वितर्क में उलझने में कोई सार नहीं होता।

एक चीज याद रखना, किसी भी कार्य को फायदे और नुकसान के आधार पर स्वीकारना, यह केवल विचार और तर्क का काम है। अच्छे और बुरे के हिसाब से स्वीकारना यह हमारी श्रद्धा के आधार से होता है। हमारी श्रद्धा कहती है तुम्हारे लिये अच्छा क्या है, उसे अपनाओ। फायदा और नुकसान नहीं देखो।

विचार फायदे और नुकसान की बात करता है। हमारे अन्दर की श्रद्धा अच्छे और बुरे की बात करती है। हमारे लिये अच्छा क्या है, बेहतर क्या है, कल्याणकारी क्या है? धर्मसम्मत क्या है? इसे स्वीकारो। ऐसा करने में यदि थोड़ा-बहुत नुकसान होता भी है तो उसे लाभ मानो। अन्यथा काम नहीं बनने वाला। इसलिये इन बिन्दुओं पर विचार कीजिए और पहल कीजिए। मुझे विश्वास है कि एक अच्छा परिणाम निकलकर आयेगा। यदि आप इसे लागू करोगे तो पूरे देश में एक बहुत अच्छा संदेश जायेगा। कलकत्ता महानगर से जो आवाज उठेगी, उसे पूरे देश तक पहुँचने में विलम्ब नहीं होगा। अभी वह मध्यप्रदेश तक सीमित है। आगे भी फैले भी।

हम कुछ अच्छी उपलब्धि के लिये सोचें। साधु-संतों के समागम के बाद यदि समाज में व्याप्त बुराई को एक-एक करके उन्मूलित करना शुरू कर दें तो बहुत सारे काम हो सकते हैं। बहुत सारी बुराईयाँ समाज में हैं, जैसे दहेज प्रथा की है, अनाप-शनाप अपव्यय की है, फालतू खर्चे की है, इन सबको हम क्रम से धीरे-धीरे दूर करें। एक साथ सारे आपरेशन तो कहीं भी संभव नहीं होते। पहले जो मूल चीज है उसे आप करिये, धीरे-धीरे एक-एक बुराई के खत्म होने से अनेक बुराईयों का खात्मा हो जायेगा। इसलिये मैं आप सबसे यह कहना चाहता हूँ कि आप बहुत विचार करते हैं। तर्क-वितर्क होता है; लेकिन तर्क-वितर्क की स्थिति बड़ी विचित्र हो जाती है।

एक बार क्या हुआ, कोर्ट में एक मामला चला। सामने वाला बहस कर रहा था। जज ने कहा - आपको जो कुछ कहना हो उसे एक वाक्य में कहिये। सामने वाले ने कहा - यह तो संभव नहीं है। क्यों संभव नहीं? बोला - मैं कह तो रहा हूँ कि एक वाक्य में कह पाना संभव नहीं है, मुझे अनेक वाक्यों का सहारा लेना ही पड़ेगा। जज बोला - क्यों नहीं है संभव? आप हमारी बात का जबाव हाँ या न में दे दो। वह कहता है - यह कैसे संभव हो सकता है। यदि आप ही मेरी एक बात का जबाव हाँ या न में दे दें तो मैं जानूँ। जज ने कहा - बोलो, क्या बात है। उसने कहा - क्या आपने अपनी बीबी को पीटना छोड़ दिया? अब जबाव क्या दें? यदि हाँ कहते हैं तो पहले पीटते थे, और यदि ना कहते हैं तो अभी भी पीट रहे हैं। बड़ी

विचित्र हालत हो जाती है कभी-कभी।

ऐसी बातों में समाधान ही नहीं मिलता। अपितु कभी तो प्रश्न और उलझ जाता है। हमारा प्रयास समाधान मूलक होना चाहिए। प्रश्न का हम समाधान कैसे निकालें, ऐसा प्रयास होना चाहिए। इसलिये हमारी कुशलता इन्हीं बातों में है कि हम धीरे-धीरे चलें, एक-एक कदम करके चलें, तो काम होगा।

का चुप साध रहा बलवाना

एक बार ऐसा हुआ, एक हाथी था। अपने ज़माने का बड़ा कुशल हाथी था। उसने बड़े-बड़े युद्ध जीते। राजा का बड़ा चहेता भी था। हाथी बूढ़ा हो गया। संयोग कुछ ऐसा हुआ हाथी पानी पीने के लिये तालाब में गया और दलदल में फँस गया। सभी चिन्तित हो उठे। वह हाथी दलदल में फँसा है अब उसे निकाला कैसे जाय। दलदल में तो निकालने की जितनी कोशिश की जाती है उतना ही फँसते चले जाते हैं। सारे उपाय के बाद भी जब हाथी निकल नहीं पाया तो राजा चिन्तामग्न हो गया। कैसे भी हो, इस हाथी को निकाला जाय। यह हाथी बड़ा पराक्रमी है। इसने बड़े-बड़े युद्ध जीते हैं।

जब कोई उपाय काम नहीं आये तो एक वृद्ध महावत को बुलाया गया। यह वह महावत था, जिसने बहुत दिन तक इस हाथी को चलाया था। वह हाथी के स्वभाव को जानता था। उसने देखा तो कहा - आप लोग पीछे हट जाइये, हाथी ऐसे नहीं निकलेगा। ठीक, कैसे निकलेगा? हाँ, हाथी निकालने का उपाय मैं बतलाता हूँ। आप सेना को बुलाइये। सेना को बुलाने की क्या जरूरत? मैं जो बोल रहा हूँ उसे तो कीजिए। सेना को बुलाया गया और युद्ध की भेरियाँ बजाना शुरू कर दी गयीं। नगाड़े बजना शुरू हो गये। जैसे ही युद्ध की भेरियाँ बजी, हाथी के अन्दर का पौरुष जाग गया। वह अगले ही पल अपनी ही ताकत से निकल कर बाहर खड़ा हो गया।

बस और कुछ नहीं है, हाथी दलदल में फँसा है, भेरी बजाने की ही देर है। यदि भेरी बजेगी तो यह दलदल से निकले बिना रहेगा नहीं। उसके बिना उसको बाहर निकालने का और कोई उपाय नहीं है। उसको बाहर निकालने का

प्रयास करेंगे तो सारे काम अपने आप होते चले जायेंगे। आप सब इन बिन्दुओं पर विचार करें।

आज मैं ज्यादा और बढ़ाने की मानसिकता में नहीं हूँ। लेकिन मैं यही कहना चाहता हूँ, कि अच्छी शुरुआत, अच्छी पहल के परिणाम अच्छे आते हैं। हमारे अन्दर संकल्प हो, दूसरे नम्बर पर सजगता और साथ में हो सक्रियता। हम जो संकल्प लें, उस संकल्प की पूर्ति के लिये, उसके पालन के लिये सजग रहें, जागरूक रहें, इस बात का ख्याल रखें, कि हमारे संकल्प शिथिल तो नहीं हो रहे हैं। यदि हमारे अन्दर जागरूकता होगी तो असंभव संभव होगा। कोई भी संकल्प शिथिल नहीं होते, हम उनके प्रति सचेष्ट होंगे, जागरूक बने रहेंगे और फिर हम सक्रिय भी होंगे जिससे हम आगे बढ़ें। अच्छे संकल्प लेने के बाद भी व्यक्ति वहीं का वहीं रहे, तो वह प्रगति नहीं कर सकता। संकल्प के साथ सक्रियता बहुत जरूरी है। अगर हम ठीक ढंग से चलेगे, सक्रिय होकर चलेगे और सजग हो करके चलेगे तो परिणाम बहुत अच्छे होंगे। इसलिये मैंने आप सबसे कहा संकल्प लीजिए। सजगता अपनाइये और सक्रिय होकर के कार्य कीजिए परिणाम बहुत अच्छे आयेगे।

जो भी लोग हैं और उनके जो भी बिन्दु हैं उनको आप शान्ति से सुनिये। उनका समाधान निकालिये। एक मानसिकता से आप बैठिये, कि हमें इसे फालो करना है। अब फालो करने में आने वाली समस्याओं का निदान क्या है। निगेटिव मत सोचिए। पॉजिटिव सोचिए। इसको करना है, यह मान लो तो असंभव संभव हो जायेगा। अन्यथा टालमटोली ही होकर रह जायेगी, कहीं कोई भी शुरुआत आप नहीं कर पायेगे। अभी यह तो छोटी-सी ही बात है, यदि कोई बड़ी बात होगी तो आप उसको नहीं कर पायेगे। हम लोग धीरे-धीरे करके चलें तो एक-एक कदम से चलकर मंजिल तक पहुँचा जा सकता है। थोड़ी-मोड़ी कठिनाइयाँ तो आती ही हैं। लेकिन कहते हैं -

**देखकर व्यवधान जो पीछे हटे,
उस जवानी को कहीं जा डूब मरना चाहिए।**

कठिनाइयों का सामना करने के लिये हमें तत्पर होना चाहिए। हमारा

यौवन, हमारी जवानी, हमारा पुरुषार्थ तो केवल इसी के लिये है कि हम तूफानी गति से आगे चलते चलें। जैसे नदी चट्टानों को चीर कर आगे बढ़ती चली जाती है। थोड़े-थोड़े व्यवधानों को देखकर यदि हम घबड़ा उठेंगे तो हम काम नहीं कर पायेगे। कामयाबी उनके लिये मिलती है जो निरन्तर सजग रहते हैं, सक्रिय रहते हैं, संकल्पबद्ध रहते हैं।

आप सबके मन में ऐसा संकल्प जगे, और उस संकल्प का आप पूर्ण सक्रियता के साथ पालन कर सकें, सजगता के साथ पालन कर सकें। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि यहाँ पर निकट भविष्य में जो सम्बन्ध होने वाले हैं, वे लोग उन सम्बन्धों को दिन में सम्पन्न करने का मन बना रहे हैं। यह बहुत अच्छी बात होगी और एक शुरुआत भी।

हम एक-दो लोगों की बात न करें, आम सहमति की बात करें। मैं आप लोगों से पूछना चाहता हूँ कि सिद्धान्ततः सामाजिक रात्रिभोज और रात्रिकालीन विवाह को कितने लोग नापसंद करते हैं? (श्रोताओं की ओर इशारा) देखिये लगभग सभी हाथ दिख रहे हैं जो रात्रिभोज एवं रात्रिविवाह को नापसंद करते हैं। इसका मतलब समाज चाहती है केवल पहल की देर है। हम इसका लाभ उठायें, इस भावना का उपयोग करें। एक-एक करके सारी बुराईयाँ दूर होंगी।

१४-४-०६ चौरंगी

घर को कैसे स्वर्ग बनायें !

चौरंगी, कोलकाता पर प्रदत्त प्रवचन-शृंखला का विशिष्ट संकलन

मुनिश्री १०८ प्रमाणसागर

प्रकाशक
निर्ग्रन्थ फाउण्डेशन
भोपाल (मध्यप्रदेश)

घर को कैसे स्वर्ग बनायें !

(चौरंगी, कोलकाता में प्रदत्त प्रवचन-शृंखला का विशिष्ट संकलन)

प्रवचनकार : मुनिश्री १०८ प्रमाणसागर जी महाराज

प्रस्तुति : डी. राकेश जैन एवं सिंघई जयकुमार जैन

संस्करण : प्रथम, दिसम्बर, २००८

प्रकाशक : निर्ग्रन्थ फाउण्डेशन, भोपाल

मो. 09425010161, 09425005624

मूल्य : २५/- (पच्चीस रुपये मात्र)

मुद्रक : विकास ऑफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स

४५, सेक्टर-एफ, औद्योगिक क्षेत्र, गोविन्दपुरा, भोपाल-462023

फोन : 0755-2601952, 2600659

यहाँ खोजिए

- 1 टकराव नहीं समझौता
- 19 इच्छाओं का करें अन्त
- 55 जगार्ये दृढ-इच्छाशक्ति
- 78 मार्ग महावीरत्व का
- 95 विजय संकल्पशक्ति की